VISHVA–JYOTI REGD NO. PB-HSP-01 (1.1.2021 TO 31.12.2023) R.N. No. 1/57 ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

71वां वर्ष, 8 अंक, दिसम्बर 2022 ई०

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
डॉ. देवराज शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक

विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

(अभिनिर्देशित पत्रिका)

(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै. शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर.

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर (वि.वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़.

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़.

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर (वि.वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब.

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस.(I) रिटा०, शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर.

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7 / 309, डी.सी. लिंक रोड, होशियारपुर (पंजाब).

डॉ. डी. रामकृष्णन, 301, वरुण एनक्लेव, एन.आर.पी. रोड, गाँधी नगर, विजयवाड़ा,

आन्ध्रा प्रदेश–520 003

डॉ. नरसिंह चरणपंडा, वी.वी.बी.आई.एस.एण्ड आई.एस. (पं. वि.पटल), साधु आश्रम, होशियारपुर.

प्रो. (डा.) ऋतुबाला, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).

दूरभाष : कार्यालय : 01882–223582, 223606

संचालक (निवास) : 01882–244750

E-mail : vvrinstitute@gmail.com

vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर

(पंजाब)

निर्णायकमण्डल सदस्य (Review Committee)

- प्रो. रघवीर सिंह, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).
- प्रो. ललित प्रसाद गौड, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा).
- प्रो. प्रेम लाल शर्मा, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).
- प्रो. मुकेश कुमार अरोड़ा, हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, लुधियाना (पंजाब).
- प्रो. (डा.). सुधांशु कुमार षडंगी, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).
- प्रो. (डा.). ऋतुबाला, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).

ISSN 0505-7523

भारत में एक प्रति का मूल्य : १० रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहतें हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेषः स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति नि:शुल्क नियमतः भेजी जाती हैं।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति नि:शुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को नि:शुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रुः विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रुः तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रुः तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रुः तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेषः- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. सत्यव्रत वर्मा	साहित्यिक नवाचार के प्रवर्तक दिवंगत सत्यव्रत शास्त्री	लेख	८
डॉ. सुरभि महाराज	पुण्य-पाप तथा विपाकसूत्र	लेख	१४
डॉ. ऋषभ भारद्वाज	कुशा की वैज्ञानिकता एवं वर्तमान में प्रासंगिकता	लेख	२०
डॉ. निर्मल कौशिक	भगवान् महावीर : अहिंसा के अग्रदूत	लेख	२५
श्री रामशरण युयुत्सु	वैदिक संस्थाओं द्वारा उपेक्षित परमात्मा का एक वैदिक नाम	लेख	२९
श्री नितिन शर्मा	जातकर्म संस्कार का काल एवं विधि-विधान	लेख	३२
श्री प्रणव कुमार सरकार	भक्तसुदर्शन नाटक में वस्तुविन्यास	लेख	३६
श्री राजेश ''चंदन''	हे मानव !	कविता	४५
श्री ओमप्रकाश बजाज	समाज	कविता	४५
श्री रमेश चन्द्र गुप्त	हे करुणाकर भगवन्	कविता	४६
श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा	सच्चा गुरु	कहानी	४७
	पुण्य-पृष्ठ		५१-५३
	संस्थान-समाचार		५४

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७१ } होश्यारपुर, मार्गशीर्ष, २०७९; दिसम्बर २०२२ { संख्या ९

शतं जीव शरदो वर्धमानः,
शतं हेमन्ताञ्छतम् वसन्तान्।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः,
शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः।। (ऋग्वेद, १०.१६१.४)

तू (शतं) सौ शरद, सौ हेमन्त और सौ वसन्त पर्यन्त (जीव) जीओ और (वर्धमानः) बढ़ता रह। इन्द्र, अग्नि, सविता (और) बृहस्पति (देवों) ने (उनके लिए दी गई) (शतायुषा) शतायु नामक आहुति से तृप्त होकर तुम्हारे लिए सौ (वर्ष की पूर्ण आयु का) पुनः (दुः) (अनुदान) देना (स्वीकार) किया है।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्।।

(मुण्डकोपनिषद्, १.१.८)

सृष्टि की रचना के समय परब्रह्म परमात्मा अपने तप से वृद्धि को प्राप्त होता है। इससे अन्न उत्पन्न होता है। अन्न से प्राण, मन, सत्य और समस्त लोक उत्पन्न होते हैं तथा कर्मों से अवश्य होने वाले, मिलने वाले सुख-दुखरूप फल प्राप्त होते हैं।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

प्रथम पुण्यतिंथि (१४ नवम्बर) पर

साहित्यिक नवाचार के प्रवर्तक दिवंगत सत्यव्रत शास्त्री

- डॉ. सत्यव्रत वर्मा

जीवित किंवदन्ती, अद्‌भुत करिश्मा आदि महनीय विशेषणों से भूषित तथा विश्व के समूचे विद्वद्वर्ग की श्रद्धा के केन्द्र दिवंगत डॉ. सत्यव्रत शास्त्री संस्कृत-जगत् की अनूठी विभूति थे। संस्कृतविद्या के सुदीर्घ इतिहास में प्राचीन पूज्य आचार्यों के अतिरिक्त वे ही कदाचित् एकमात्र ऐसे पण्डित थे, जो भारती विद्या से एकाकार होकर अमरत्व को प्राप्त हो गये थे। मातृभूमि की माटी से सर्वात्मना सम्पृक्त हो, हुए भी डा. शास्त्री अपनी विश्वव्यापी साहित्यिक गतिविधियों के कारण कृत्रिम सीमाओं को लांघ कर, विश्व नागरिक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। संसार में संस्कृतविद्या का शायद ही कोई ऐसा केन्द्र हो जिसे उन्होंने अपने अध्यापन-कौशल से गौरवान्वित न किया हो अथवा वहाँ प्राचीन भारतीय प्रज्ञा के प्रसार में नाना प्रकार से योगदान न किया हो और उस पुण्य कर्म से जो यश प्राप्त हुआ, वह केवल उनके लिये नहीं, अपितु समूचे देश के लिये गर्व ओर गौरव का विषय है।

डॉ. शास्त्री अप्रतिम वैदुष्य के भाग्यशाली उत्तराधिकारी थे। उनकी औपचारिक शिक्षा यद्यपि विभिन्न सस्थानों में सम्पन्न हुई किन्तु उनका वास्तविक विनयन पूज्य पिता पण्डित चारुदेव शास्त्री के सान्निध्य में हुआ था, जो पाणिनीय शास्त्र की अद्वितीय मर्मज्ञता के कारण 'अभिनव पाणिनि' उपनाम से ख्यात थे। आश्चर्य नहीं, व्याकरणशास्त्र के रहस्यों और जटिलताओं में अपनी अन्तर्दृष्टि और संस्कृत वाणी के स्वरूप की अमोघ अभिज्ञता के कारण डॉक्टरवर भी शनैः-शनैः पिताश्री की प्रतिकृति बन गये। डॉ. शास्त्री वस्तुतः अन्तर्विरोधों का पुंज थे। पाणिनीय शास्त्र के सुधी तत्त्वज्ञ होते हुए भी वे वर्तमान युग के मूर्धन्य कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए और इस धारणा को कि कवि समीक्षक नहीं हो सकता, मिथ्या सिद्ध करते हुए उन्होंने तलस्पर्शी समीक्षक के रूप में भी स्पर्धनीय ख्याति अर्जित की। शास्त्री जी जितने प्रतिभाशाली कवि थे, उतने ही कुशल समीक्षक थे। उनमें शक्ति (कारयित्री प्रतिभा) तथा व्युत्पत्ति (भावयित्री प्रज्ञा) का स्पृहणीय संयोग था और उनकी अनगिन कृतियों में उन दोनों की प्रभूत अभिव्यक्ति हुई है।

अपने सर्जनात्मक वाङ्मय में नवाचारों तथा

नव प्रयोंगो के द्वारा डॉ. शास्त्री ने परम्पराबद्ध संस्कृतकाव्य को अभिनव आयाम प्रदान किये हैं। उनकी समूची काव्यकृतियाँ अभिनवता से स्पन्दित हैं। साहित्य को नवीन भंगिमाएँ देने के अतिरिक्त उसमें कतिपय नयी विधाओं का प्रवर्तन करने के कारण डॉ. शास्त्री को पथिकृद्-मार्ग निर्माता-कहना सर्वथा उपयुक्त होगा। काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्धारित जीर्ण-शीर्ण काव्य-वृत्तों के विपरीत डॉ. शास्त्री की प्राय: सभी काव्यकृतियाँ सर्वथा नवीन परम्परामुक्त-इतिवृत्तों से स्पन्दित हैं। जहाँ **बोधिसत्त्वचरित** बोधिसत्त्व के अमृतोपम अवदानों में अन्तर्निहित उदात्त आदर्शों से ओतप्रोत है, जो समाज को दिव्य नैतिक आभा प्रदान करते हैं; वहाँ **रामकीर्तिमहाकाव्य** में रामकथा के एक विदेशी (थाई) रूपान्तर को काव्य का विषय बनाने का साहस किया गया है। सुविज्ञात रामकथा में की गयीं 'क्रान्तिकारी' उद्भावनाओं पर भले ही परम्परावादी नाक-भौं चढाएँ, अपने काव्य गुणों के कारण **रामकीर्तिमहाकाव्य** समवर्ती महाकाव्यों में अत्युच्च पद पर आसीन है। काव्य में दो भिन्न सांस्कृतिक मान्यताओं के कन्धा से कन्धा मिला कर चलने से रामकथा नयनाभिराम शोभायात्रा-सी प्रतीत होती है।

अपनी नवान्वेषण की वृत्ति के अनुरूप डॉ. शास्त्री ने देश-विदेश के इतिहास का भी मन्थन किया है। **इन्दिरागान्धीचरितम्** को आपातत: प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी की संस्कृत पद्य में निबद्ध प्रथम जीवनी कहा जा सकता है, किन्तु इसमें वस्तुत: स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय इतिहास के अद्यावधि अशान्ततम तथा क्षुब्ध युग का निरूपण तथा आकलन है। स्वतन्त्रता-संग्राम के परिवेश में फिट होने कारण उसे नयी भगिमा भी मिली है। **श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्** संस्कृत के ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा में वैविध्य का संचार करता है। दशम गुरु के उदात्त जीवन के अतिरिक्त इसमें सिक्ख इतिहास का एक अतीव कठिन युग भी साकार हो उठा है। बृहत्तरभारतम् भारत की अग्रिम सांस्कृतिक चौकी, दक्षिण-पूर्व एशिया-बृहत्तर भारत-की सांस्कृतिक विशिष्टताओं तथा क्षुब्ध इतिहास का गौरवगान है। **थाईदेशविलासम्** में, इसी शैली में किन्तु अधिक कवित्वपूर्ण रीति से, प्राचीन श्यामदेश (आधुनिक थाईलैण्ड) के गौरव का निरूपण किया गया है, जिसके साथ आज भी भारत के गहरे सांस्कृतिक तथा धार्मिक सम्बन्ध हैं। **कोऽहम्** आधुनिक मनुष्य के खण्डित तथा विरोधाभासी व्यक्तित्व का लघुकाय विचारप्रधान विमर्श है। इससे नवीन तथा आधुनिक भावों को वाणी देने की संस्कृत-भाषा की क्षमता भी भरपूर प्रकट हुई है।

पत्रलेखन की सामान्य विधि को साहित्यिक गरिमा प्रदान करने का श्रेय डॉ. शास्त्री को ही प्राप्त है। **पत्रकाव्यम्** (दो भाग) में संकलित २७० पत्रों

में से अनेक पत्र लघुकाव्य से प्रतीत होते हैं। विविध काव्यगुणों से अलंकृत वे वस्तुतः काव्य की नव विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं। रमाकान्त शुक्ल को लिखा गया १३७ पद्यों का पत्र संस्कृत-साहित्य का कदाचित् विशालतम पत्र है। डॉ. शास्त्री ने यात्रासाहित्य का यथाशक्ति भरपूर पोषण किया है। **शर्मण्यदेशः सुतरां विभाति** तथा **चरन् वै मधु विन्दति** लेखक की जर्मनी, हंगरी, स्पेन, बेल्जियम, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया आदि देशों की सांस्कृतिक यात्राओं का अतीव रोचक शिक्षाप्रद तथा चित्ताकर्षक विवरण प्रस्तुत करते हैं। **चरन् वै मधु विन्दति** तो यात्रा वृत्त के अतिरिक्त विदेशी संस्कृत-विद्वानों की मनोरम दीर्घा प्रतीत होती है। उनके शब्दचित्रों में उनका वैदुष्य तथा संस्कृत के उन्नयन में उनका योगदान साकार हो उठा है। **दिने दिने याति मदीयजीवितम्** में भी लेखक की नवाचार की वृत्ति भरपूर प्रकट हुई है। संस्कृत में लिखित प्रथम डायरी होने के नाते यह साहित्य में नयी विधा का प्रवर्तन करती है। कहने को तो यह मात्र दैनंन्दिनी है किन्तु काव्यगुणों के कारण यह गद्यकाव्य से किसी प्रकार कम नहीं है। **भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र** (तीन भाग) से भी संस्कृत साहित्य में नयी काव्यविधा का आविर्भाव हुआ है। आत्मकथा होने के नाते इसमें लेखक के घटना-संकुल, वैविध्यपूर्ण, बहुमुखी व्यक्तित्व तथा साहित्यिकउपलब्धियों का सम्पूर्ण चित्र समाहित है।

काव्यकृतियों के निष्पादन तथा निर्वाह में भी यही नवीन-प्रियता दृष्टिगोचन होती है। उस पर प्रौढ़ मस्तिष्क की छाप स्पष्ट अंकित है, जो काव्यधर्मों से सुतरां अभिज्ञ किन्तु अनावश्यक विस्तार से सर्वात्मना विमुख है। लेखक ने महाकाव्यों के कथानक को जिस प्रकार सुगठित रूप दिया है, वह उसके भीमकाय इतिवृत्त को काव्य के अनुकूल बनाने के कौशल का परिचायक है। उसने **बोधिसत्त्वचरित** में खण्डित कथानक को ग्रहण कर, भाव (व्यक्ति को नहीं)को नायक-पद पर प्रतिष्ठित कर तथा सब रसों को खुली छूट देकर परम्परा को खुली चुनौती दी है। **रामकीर्तिमहाकाव्य** में रामायण के आदरणीय पात्रों को जिस चित्र-विचित्र रूप में अंकित/प्रस्तुत किया गया है, वह श्रद्धालु भारतीय को आमूलचूल विचलित कर देगा।

शास्त्री जी की काव्यकृतियाँ मानव-चेतना की महानता का मनोहारी गान हैं। उन कृतियों के मंच पर अनेक महापुरुष विराजमान हैं, जो अपनी महानता तथा बुद्धिमत्ता से मानवजाति को पूर्ण निष्ठा और उत्साह से लौकिक तथा आध्यात्मिक भव्यता प्राप्त करने को प्रेरित करते हैं।

डॉ. शास्त्री की कृतियों में कवित्व और शब्द-शास्त्र का सुखद समन्वय है। उनमें निस्सन्देह कवित्व का प्राधान्य है पर कवि के भीतर का वैयाकरण भी अपना चमत्कार दिखाने

को आतुर है। किन्तु उनकी कृतियों में प्रयुक्त विद्वत्तापूर्ण प्रयोग अपनी जगह डॉ. शास्त्री समकालीन युग के उन इने-गिने कवियों में अग्रणी हैं, जिनकी भाषा क्लासिकल शुद्धता से शोभित है। वह सर्वत्र प्राञ्जल तथा सुग्राह्य है। उनकी दृष्टि में अर्थपूर्ण रसात्मक उक्तिविशेष ही काव्य है - **उक्तिविशेषः काव्यम् अर्थ्यं च हृद्यं च।**

डॉ. शास्त्री के साहित्यिक व्यक्तित्व में कारयित्री प्रतिभा तथा भावयित्री प्रज्ञा का मनोरम समन्वय है। उनकी व्युत्पत्ति के नाना पक्ष हैं जो उनकी समीक्षात्मक रचनाओं में भरपूर बिम्बित हैं। The Rāmāyaṇa : A Linguistic Study उनकी सर्वोत्तम समीक्षा कृति है। इसमें वाल्मीकि के अमर काव्य रामायण की भाषा के सभी पक्षों का सर्वांगीण विमर्श इस विशदता तथा गहनता से किया गया है कि आदिकवि की वाणी का सच्चा स्वरूप मुखर हो उठा है। इसके परिशीलन के बिना रामायण का अध्ययन अधूरा ही रहेगा। यद्यपि योगवासिष्ठ की भाषा और कविता के इसी पद्धति से परिशीलन का प्रकल्प पूर्ण नहीं हो सका, किन्तु The Yogavāsiṣtha : A Linguistic Appraisal में संकलित, उसकी भाषा के विविध पक्षों से सम्बन्धित ग्यारह निबन्धों से उस महान् कृति की भाषा की समृद्धि और वैशिष्ट्य की मनोरम झलक मिल जाती है।

व्याकरण तथा भाषाशास्त्र के अतिरिक्त दर्शन, संस्कृति, रामायण-महाभारत, पुराण तथा महान् कलासिकल लिट्रेचर में भी शास्त्री जी की गहरी पैठ थी। Discovery of Sanskrit Treasures के सात भागों से यह निर्भ्रान्त रूप से स्पष्ट हो जाता है, जिसमें प्राचीन संस्कृत साहित्य में निहित ज्ञाननिधि पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुई हैं। डॉ. शास्त्री ने कालिदास को भी अपने विशिष्ट अध्ययन तथा अनुसन्धान का विषय बनाया है। कविकुल गुरु की कविता की महानता ने समकालीन संस्कृतकवियों और नाटककारों को कितनी गहराई तक प्रभावित किया है, इसका विशद विश्लेषण New Experiments in Kālidāsa और Kālidāsa in Modern Sanskrit Literature में मिलेगा। थाईदेश के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने में भारतीय संस्कृति और उसकी अक्षय निधि संस्कृत किस प्रकार अनुस्यूत है, Studies in Sanskrit and Indian Culture in Thailand में इसका भव्य निरूपण हुआ है। थाईदेश से सम्बन्धित रचनाओं में Sanskrit Inscriptions of Thailand महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें थाईलैण्ड के विभिन्न स्थानों से प्राप्त विविध आकार के अभिलेख संगृहीत हैं। अंग्रेजी अनुवाद और शिलालेख में निविष्ट ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भाषात्मक सामग्री के विमर्श से ग्रन्थ का महत्त्व दूना हो गया है। सभी अभिलेख हिन्दुसंस्कृति और आदर्शों से ऐसे ओतप्रोत हैं कि यह विश्वास करना कठिन है

कि इनकी रचना विदेशी विद्वानों द्वारा की गई है। Sanskrit Studies : New Perspectives में संकलित डॉ. शास्त्री के मुख्य भाषण संस्कृत-साहित्य की अनेक जटिल समस्यओं पर पुनर्विचार करने को प्रोत्साहित करते हैं।

Sanskrit Writings of European Scholars अनोखी कृति है। इसमें यूरोप के विभिन्न देशों के विद्वानों की संस्कृत-रचनाएँ संगृहीत की गयी हैं। उनमें पत्रों से लेकर काव्य तथा भाष्य तक सम्मिलित हैं, जो उनके प्रणेताओं की संस्कृतभाषा में गहरी पैठ और शास्त्रनैपुण्य के परिचायक हैं। इससे भारतीय पण्डितों की इस मिथ्या धारणा का उच्छेद हो जाता है कि विदेशी संस्कृतविद्वान् सम्पादन, व्याख्यान, अनुवाद आदि में कितने भी निष्णात हों, मूल संस्कृत-लेखन में वे सर्वथा अक्षम हैं। ग्रीक तथा जर्मन भाषा के सुभाषितों के कैपलर द्वारा किये गये अनुवाद यवनशतक तथा सुभाषितमालिका कवि के गहन व्याकरण ज्ञान, काव्यकौशल तथा हिन्दु-संस्कृति की गहरी अभिज्ञता के परिचायक हैं। मोनस, बू (भृगुपाददास) के स्वरचित श्रीश्री षड्भुजाष्टक पर स्वोपज्ञ भाष्य को पढ़ कर भारत के बड़े-बड़े पण्डित भी दान्तों तले अंगुली दबाने लगेंगे। Human Values (दो भाग) वस्तुत: उन उच्च नैतिक एवं चारित्रिक आदर्शों और मानदण्डों की निधि है, जो भारतीय चिन्तन में अनादिकाल से रचे-पचे हैं, और जिन्होंने देश को विश्व-समुदाय में अनूठा स्थान प्रदान किया है।

डॉ. शास्त्री के हाथों में आकर प्राक्कथन-लेखन की नीरस प्रक्रिया भी मनोहारी कला बन गयी है। उन्होंने वेद से लेकर श्येनिक शास्त्र तक के विषयों से सम्बन्धित १२५ ग्रन्थों का प्राक्कथन लिखने का कीर्तिमान स्थापित किया है। गहन चिन्तन और विषय के विशद विमर्श के कारण वे एक अभिनव विधा के प्रतीक प्रतीत होते हैं। अंग्रेजी, संस्कृत (पद्य, गद्य) तथा हिन्दी में लिखित उन प्राक्कथनों को Introducing New Works on Sanskrit नामक विशालकाय (४५० पृष्ठ) ग्रन्थ में संकलित किया गया है, जो वस्तुत: गत अर्ध शताब्दी में प्रणीत संस्कृत-साहित्य का सारभूत संग्रह है। शास्त्री जी की व्युत्पत्ति अनुवाद के उर्वर क्षेत्र में खूब अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अंग्रेजी, संस्कृत तथा हिन्दी रूपान्तर किया है, जो वैयाकरण की अधिकारपूर्णता, भाषाविज्ञानी के सौष्ठव और कवि की सहृदयता से भासित है। उनकी दृष्टि में अनुवाद का मर्म भाषा स्वारस्य में निहित है। अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिये उसमें मूल की अन्तरात्मा पूर्णतया ध्वनित होनी चाहिए। उसका अनुवाद की भाषा की प्रकृति के अनुकूल भी उतना ही अनिवार्य है। डॉ. शास्त्री ने अपने अनुवाद में इन मानदण्डों का पालन करने का भरपूर प्रयत्न किया है। अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने नित्यानन्द शास्त्री के महाचित्रकाव्य

रामचरिताब्धिरत्नम् तथा मैक्डानल के A Vedic Grammar for Students का क्रमश: अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद करने का घनघोर उद्योग किया है, यद्यपि जटिलताओं और दुरूहताओं के कारण उनका भाषान्तर करना लगभग असम्भव है। उधर **चाणक्यनीति** का हिन्दी अनुवाद इस कटु सत्य का परिचायक है कि कभी-कभी सुगम पदावली भी जटिल भाषा के समान दुस्साध्य हो सकती है।

शास्त्री जी का कृतित्व बीस शोध प्रबन्धों का विषय बना है, यह भी गौरव का विषय है। तीन शोधकर्ता डी. लिट् की महनीय उपाधि से अलंकृत हुए हैं।

ऐसे बहुमुखी विद्वान् और लेखक का पुरस्कारों और सम्मानों से अलंकृत होना स्वाभाविक था। पद्मभूषण सहित शताधिक सम्मनों की प्राप्ति किसी कीर्तिमान से कम नहीं है। वे ही एकमात्र संस्कृत-विद्वान् थे, जिन्हें नोबल पुरस्कार के समकक्ष भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था। यह वस्तुत: संस्कृत-जगत् की महती उपलब्धि थी।

शास्त्री जी के जीवन का जो सामूहिक बिम्ब उभरता है, वह लोकविद् प्रकाण्ड पण्डित का बिम्ब है। अपने वैदुष्य और व्यवहार कौशल से उन्होंने वह सब कुछ प्राप्त किया, जिसकी कोई जीवन में कामना कर सकता है। वह आप्तकाम थे।

- 6/34, पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास,
श्रीगंगानगर, (राज.) - 335 001

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

पुण्य-पाप तथा विपाकसूत्र

- डॉ. सुरभि महाराज

क्रमश :-

अप्बहुलकाण्ड-

इसका नाम अप्बहुल भाग भी है। इस काण्ड में दुर्गन्धित जल की अधिकता है और इसका कोई विभाग नहीं है, एक ही प्रकार का है। यह अस्सी हजार योजन की मोटाई वाला है। इस प्रकार रत्नप्रभा के तीनों काण्डों को मिलाने से रत्नप्रभा की कुल मोटाई (16+84+80) एक लाख अस्सी हजार हो जाती है।[1]

इस प्रकार रत्नप्रभा भूमि की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। इसमें ऊपर और नीचे के एक-एक हजार योजन छोड़कर शेष एक लाख अठहत्तर हजार योजन में तेरह पाथड़े (प्रस्तर) यानि पृथ्वीपिण्ड हैं और बारह आन्तरे अथवा रिक्त स्थान हैं। इस प्रकार तेरह मंजिल जैसा भवन है। पाथड़ों में नरकावास है इन नरक-वासियों की संख्या तीस लाख है। आन्तरों में पहले दो आन्तरे रिक्त अर्थात् खाली हैं और शेष दस में भवनपति देवों के निवास हैं। यहाँ निवास करने वाले जीवों की कम से कम आयु दस हजार वर्ष और अधिक से अधिक एक सागर की है।[2]

एकादि राष्ट्रकूट किसी प्रान्तविशेष का शासक होते हुए निर्दयी एवं लोलुप हो गया था। अनेक दानवीय कृत्यों से वह अपने कर्मों से च्युत होते हुए अनेक विपत्तियों का सामना करता है, उसे सोलह प्रकार के भयंकर रोग हो जाते हैं। इस प्रकार इस भव में ढाई सौ वर्ष की आयु में द्रव्य नरक का भोग करते हुए अन्त में रत्नप्रभा नरक में उत्कृष्ट सागरोपम काल तक यहाँ निवास करता है।[3]

इसी प्रकार मृगापुत्र का जीव सिंहयोनि में जाता है, जैसा कि हिंसक जानवर सिंह का स्वभाव क्रूरता और हिंसाचार है, इसी कारण सिंहयोनि से भी आगे इसी नरक में उत्कृष्ट सागरोपम नारकीय जीवन यापन करता है। इसी प्रकार उज्झितक,[4] प्रियसेन[5] आदि को भी रत्नप्रभा नरक में अपने कृत्यों के कारण उत्कृष्ट सागरोपम नरक का भोग भोगना पड़ता है। इसके विपरीत

---

१. जीवा. भि. सू. (डा. रा. मु.) ३.६९ पृ. १९८
२. त. सू. (के. मु.) ३. १-२ (विवे.)
३. विपाकसूत्र (दु:ख) १.१२
४. वही, २.१८
५. वही

अभग्रसेन[6] को एक सागरोपम नारकीय भोग यहां भोगना पड़ता है। इसी प्रकार अन्य पात्रों के बारे में भी ज्ञातव्य हैं।[7]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जो जीव असंयमी पंचेन्द्रिय हैं वे इस रत्नप्रभा नरक में उत्पन्न होते हैं। वे दूसरे तीसरे आदि में उत्पन्न नहीं होते। यही बात सिद्धान्तसार[8] से भी परिपुष्ट हो जाती है।

२. शर्कराप्रभा और विपाकसूत्र-

जिसमें शर्करा या पत्थर के टुकड़ों या कंकड़ों जैसी प्रभा है, यानी पाषाण खण्डों जैसी प्रभा है, जिसका वर्ण पत्थरों के समान है अथवा जहाँ तीखे पत्थर के टुकड़ों की अधिकता है उस पृथ्वी को शर्कराप्रभा कहते हैं। दूसरी नरक भूमि में कंकड़ों या तीक्ष्ण पाषाण खण्डों की बहुतायत पाई जाती है, इसीलिए इसका नाम शर्कराप्रभा रखा गया है।[9] इस भूमि की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन है। इसमें ग्यारह पाथड़े और बारह आन्तरे हैं। इन पाथड़ों में पच्चीस लाख नारकी जीव वास करते हैं। इन जीवों की जघन्य (कम से कम) आयु एक सागर और उत्कृष्ट आयु तीन सागर की है।[10]

मृगापुत्र का जीव अनेक नरकों में और योनियों में भटकता हुआ सरीसृप के रूप में तिर्यंचायु में जन्म लेता है। वहाँ वह अपने स्वभाव के अनुरूप अनेक प्रकार के कीट पतंगों से जीवनयापन करता हुआ अन्त में इस नरक में आता है और तीन सागरोपम, जो कि इस नरक की उत्कृष्ट स्थिति है, काल मर्यादा है, रहता है और नारकीय भोगों से दुःखी रहता है।[11] उधर गोत्रास जो कि अर्द्धरात्रि के समय नागरिक गोशालाओं में, जंगलों में अथवा जहां भी संभव हो मूक पशुओं के अंगोंपांगों को काटकर लाता है और उनसे अपना जीवनयापन करता है व बाज़ार में जाकर उन्हें बेचता है। इस प्रकार अपने इन कुकृत्यों से अपना नाम सार्थक करता हुआ इस शर्कराप्रभा नरक में उत्कृष्ट काल अर्थात् तीन सागरोपम तक निवास करता है।[12] स्पष्ट है कि सरीसृप इत्यादि जीव मरकर दूसरी नरक में उत्पन्न होते हैं और गिरगिट इत्यादि प्राणी भी मरणोत्तर दूसरे नरक की भूमि में उत्पन्न होते हैं।[13]

३. बालुकाप्रभा और विपाक सूत्र-

बालुका और बालिका ये दोनों शब्द रेत, धूल या कूड़ा-कर्कट के बोधक हैं। जिस नरक भूमि में

६. विपाकसूत्र, ३.२०
७. वही, ४.७; ५.७; ६.८; ७.१०; ८.७; ९.१३; १०.५
८. सिद्धान्तसार : ६.७५
९. शर्कराणामुपलखण्डानां प्रभा प्रकाशनं स्वरूपेणावस्थानं यस्यां सा शर्कराप्रभा। अनु. मल. वृ. पृ. ८९
१०. त. सू. (के. मु.) ३. १-२ (विवे.)
११. वि. सू. (दुःख) १.१९
१२. वि. सू. (दुःख) २.११
१३. सिद्धान्तसार, गा. ६.७६

रेत की प्रभा है, उसे बालुकाप्रभा कहते हैं। रेत की अधिकता के कारण इस पृथ्वी को बालुकाप्रभा कहतें हैं।[१४] इस भूमि की मोटाई एक लाख अठतालीस हज़ार योजन है। इसमें नौ पाथड़े और आठ आन्तरे हैं। इसमें पन्द्रह लाख नारकी जीव निवास करते हैं। इन जीवों की जघन्य आयु तीन सागर व उत्कृष्ट आयु सात सागर की है।[१५]

एकादि राष्ट्रकूट का जीव जो का मृगापुत्र आदि के अनेकों भवों में अनेकों नामों से जाना जाता है वह जब पक्षीयोनि में आता है वहाँ अनेक प्रकार के कीट पतंगों का नाश करता है, लोगों की फसल को नष्ट करता है। इस प्रकार पक्षी स्वभाव के अनुकूल अनेक प्रकार के दूष्य कर्मों का संचय करता है। इन्हीं के कारण और पूर्ण भव में इसके अतिरिक्त संचित कर्मों के कारण यह जीव बालुकाप्रभा में नारक आयुष्य को धारण करता है। यहाँ सात सागरोपम काल तक अनेकविध नारकीय जीवन का भोग भोगता है।[१६] इसके विपरीत निर्णय नामक अण्डों का व्यापार करने वाला व्यापारी अण्डों में स्थित पक्षी जीवों की निर्मम हत्या करने के कारण इस बालुकाप्रभा नरक में अपने कुकृत्यों का फल भोगने के लिए यहाँ उत्कृष्ट काल तक अर्थात् सात सागरोपम काल तक अपने कर्म विपाक का स्वाद चखता है।[१७] पक्षी जीव मरकर तीसरी पृथिवी में उत्पन्न होते हैं।[१८]

४. पंकप्रभा और विपाक सूत्र-

पंक कहते हैं- कोचड़ को। पंक की कांति जैसे द्रव्य जिस भूमि में हैं, उसे पंकप्रभा कहते हैं। जैसा वर्ण कीचड़ का होता है, वैसा ही वर्ण चतुर्थ नारकभूमि के द्रव्यों का पाया जाता है, फलतः इसका नाम पंकप्रभा रखा गया है। पैरों में चिपकने वाली, या अन्दर फंसा देने वाली फिसनल वाली भूमि को कीचड़ कहते हैं। वैसे कीचड़ की अधिकता होने से ही इस नरकभूमि को पंकप्रभा नाम दिया गया है।[१९] इस भूमि की मोटाई एक लाख बीस हजार योजन की है। इसमें सात पाथड़े और छहः आन्तरे हैं। इसमें दस लाख नरकावास है। इसमें जीवों की कम से कम आयु सात सागर व उत्कृष्ट दस सागर की है।[२०]

मृगापुत्र के जीव ने अनेकों भवों में अनेक जन्म लिये और अनेक कृकृत्य किये जिसके परिणामस्वरूप वह पक्षी बनता है। यहां भी कुकृत्यों को करने से हटना उसका सम्भव नहीं।

---

१४. बालुकाया वालिकाया व परुषपांशूत्कररूपाया: प्रभा स्वरूपावस्थितिर्यस्यां सा वालुकप्रेम वालिकप्रभेति वा। अनु. मल. वृ. पृ. ८९

१५. त. सू. (के. मु.) ३. १-२ (विवे.)

१६. वि. सू. (दु:ख) १.१९

१७. वि. सू. (दु:ख) ३.५

१८. सिद्धान्तसार गा. ८.७६

१९. पंकस्य प्रभा यस्यां सा प्रंकप्रभा, पंकाभद्रव्योपलक्षितेत्यर्थ:। अनु. मल. वृ. पृ. ८९

२०. त. सू. (के. मु.) ३. १-२ (विवे.)

इसलिए बालुप्रभा में नारकीय जीवन व्यतीत करता है। यहां से वह फिर सिंहयोनि अर्थात् तिर्यंच आयुष्य को प्राप्त करता है। यहां भी अत्यन्त दुष्कर्म करता है और पंकप्रभा में नारकीय जीवन भोगने के लिए आ जाता है।[२१] इधर छण्णिक नाम का एक छागलिक (कसाई) है जो कि अपने बड़े-बड़े बाड़ों में बकरे, भेड़, गाय, हिरण, मयूर, भैंस इत्यादि अनेक प्रकार के जीवों को पालता है उनके दूध और मांस का व्यापार करता है। अपने इस व्यापार को खूब फैलाता है। छण्णिक सात सौ वर्ष की आयु भोगकर और अन्त में अपने इन दुष्कृत्यों का फल भोगने के लिए इस नरक में उत्कृष्ट आयु तक अर्थात् दस सागरोपम नारकीय जीवन भोगता है।[२२]

५. धूमप्रभा और विपाकसूत्र-

धूम या धूम्र का अर्थ है- धुँआ। सुलगती हुई या जलती हुई लकड़ी कोयले आदि से निकलने वाला भाप या गैस जैसा एक हल्का काला पदार्थ। जिस नरकभूमि में द्रव्यों की कान्ति (प्रभा) धुएं जैसी है- उसे धूम्रप्रभा कहते हैं।[२३] इस भूमि की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन है। इसमें पांच पाथड़ें और चार आन्तरे हैं। इसमें तीन लाख नारकावास है। इसमें जीवों की जघन्य आयु दस सागर और उत्कृष्ट आयु सतरह सागर की है।[२४]

हिंसाचार का यह महात्म्य है कि मृगापुत्र का जीव अनेकों भवों से होता हुआ सर्पयोनि में आता है ओर यहां जैसा कि सर्प का स्वभाव है स्वयं के बच्चों को खा जाना, प्रतिघात करने में तत्परता दिखाना असहिष्णु होना इत्यादि अनेक कृत्यों के द्वारा पूर्व संचित अनेक दुष्कर्मों के साथ-साथ और अधिक अशुभ कर्मों का बन्ध करता है और यहां आकर धूमप्रभा में पूर्व संचित कर्मों के जो कि उदय में आ चुके हैं, उनका भोग करने के लिए धूमप्रभा के नारकीय जीवन का भोग भोगता है।[२५]

कर्मों का प्रभाव देखिए कि महेश्वरदत्त पुरोहित जो कि चारों वेदों का ज्ञाता व सद्-असद् का ज्ञाता है और शुभ-अशुभ कर्मों के स्वरूप को जानता है फिर भी मोहवश अपने हित के कारण राजा का पौरोहित्य कर्म का सम्पादन करता है। अत: राजा की भलाई में अपनी भलाई समझता हुआ; दूसरे शब्दों में अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए राजा से अनेक कुकृत्य करवाता है और स्वयं भी करता है। बालहत्या व अन्य जीव हत्याओं के माध्यम से शान्तिहोम राजा से करवाता है। इसके परिणाम स्वरूप पापाचार में संलग्न होने के कारण तीन हजार वर्ष की आयु भोगता है जो कि पाप कर्म के संचय के लिए पर्याप्त है। अन्त में सतरह सागरोपम वर्ष तक इस धूमप्रभा नरक में

---

२१. वि. सू. (दु:ख) १.१९ २२. वि. सू. (दु:ख) ४.३

२३. धूमस्य प्रभा यस्यां सा धूमप्रभा, धूमाभद्रव्योपलक्षितेत्यर्थ:। अनु. मल. वृ. पृ. ८९

२४. तङ सू. (के. मु.) ३. १-२ (विवे.) २५. वि. सू. (दु:ख) १.१९

नारकीय जीवन का सामना करता है।[२६]

६. तमःप्रभा और विपाक सूत्र-

तम कहते हैं- अन्धकार या काले द्रव्य को। जिस नरकभूमि में पदार्थ काले (कृष्ण) द्रव्य रूप अन्धकार के समान कान्ति वाले हैं, अथवा जहाँ अंधेरे की बहुलता (अधिकता) होने से इस नरकभूमि को तमः प्रभा कहते हैं।[२७] इस भूमि की मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन हैं। इसमें तीन पाथड़े और दो आन्तरे हैं। इसमें पांच कम एक लाख नरकावास हैं। इसमें जीवोंजघन्य आयु सतरह सागर और उत्कृष्ट तेंतीस सागर है।[२८]

एकादि राष्ट्रकूट के जीव ने अनेकों भवों में अनेक प्रकार के कर्मों का बन्ध किया है यही कारण है कि वह उन कर्मों की निर्जरा के लिए स्त्रीयोनि में आ जाता है। यहां रहकर इस भव में स्त्रीउचित शुभ-अशुभ कर्मों का बन्ध करता है। वर्तमान में और पूर्व में जिन अशुभ कर्मों का उसने बन्ध किया था उनको भोगने के लिए इस नरक में आ जाता है।[२९]

इसी प्रकार दुर्योधन सिंहपुर नामक नगर में सिंहरथ राजा का एक चारकपाल (जेलर) है। जो राजा को प्रसन्न करने के लिए अपने पद का दुरुपयोग करता है। अपराधी को उसके द्वारा किए गये अपराध से भी अधिक न्याय के विपरीत दण्ड देता है। निर्दयतापूर्वक उन्हें यातनाएँ देता है, जो कि नितान्त एक घृणित कार्य है। मानवीय पक्ष का उसके मन में कोई भी आदर नहीं। यही कारण है कि वह इकतीस सौ वर्ष की आयु को भोगता है और अनेक प्रकार से अशुभ कर्मों का बन्ध करता है। इन्हीं के कारण वह इस तमःप्रभा नरक में अपने कर्म बन्धों के क्षय के लिए बाईस सागरोपम काल तक कर्म अकाम निर्जरा करता है।[३०]

इसी प्रकार धन्वन्तरी वैद्य जो कि अनाथों, श्रमणों, ब्राह्मणों, भिक्षुकों कितने ही प्रकार के लोगों को मत्स्य, मांस, अण्डा आदि खाने का प्रचार करता है। यहां वह मनुष्य भव में आए हुए जीव को स्थिर रखने के लिए तिर्यंच भव मे उत्पन्न जीवों की हत्या को उचित ठहराता हुआ मनुष्यों के रोगों के उपचार में लगा रहता है। यद्यपि एक तरफ वह शुभ कर्मों का बन्ध कर रहा है तो दूसरी ओर अनेक जीवों की हत्या करवा कर अशुभ कर्मों का बन्ध करता है। इस भव में वह बतीस सौ वर्ष की आयु भोगता है और नारकीय जीवन के लिए अपना मार्ग प्रशस्त करता है। यही कारण है कि उसे इस तमः प्रभा नरक में बाईस सागरोपम जो कि इस नरक में ठहरने की उत्कृष्ट

---

२६. विपाकसूत्र (दु:ख) ५. ३-४

२७. तमसः प्रभा यस्यां सा तमः प्रभा- कृष्णद्रप्योपलक्षितेत्यर्थः । अनु. मल. वृ. पृ. ८९

२८. त. सू. (के. मु.) ३.१-२ (वि.)

२९. वि. सू. (दु:ख) १.१९

३०. विपाकसूत्र (दु:ख) ६.४

स्थिति है, तब कर्म बन्धों की अकाम निर्जरा करता है।[31]

श्रीद रसोइया का चरित्र भी कुछ धन्वन्तरी जैसा ही है जो कि राजा को रसोई में अनेक प्रकार के मांसों का भोजन तैयार करता है।[32]

सिंहसेन तो अपनी प्रेयसी के लिए पांच सौ में से चार सौ निनयान्वें अपनी पत्नियों की माताओं को जला देता है। उनका अपराध केवल इतना ही है कि उनकी लड़कियों की ओर सिंहसेन का विमुख होने के लिए वे सभी दु:खी हैं तथा राजा सिंहसेन की पटरानी श्यामादेवी को अपने रास्ते से हटाने के लिए षड्यन्त्र करती फिरती हैं। सिंहसेन का यह एक भयंकर रूप ही है कि वह राजा होते हुए भी जो कि एक आदेश के अनुसार उन्हें बन्दी बनाकर कारागार में जीवनभर रख सकता था, परन्तु रखता नहीं और उनका वध करवा देता है। यही कारण है कि इन दारुण कृत्यों के कारण उसे तम: प्रभा नामक नरक में बाईस सागरोपम काल तक नारकीय जीवन भोगना पड़ा।[33]

तम: प्रभा नरक में वे ही जीवन जीते हैं जो हिंसाचार को बढ़ावा देते हैं ऐसी बात नहीं। क्योंकि यह बात पृथिवी श्रीगणिका के चरित्र से स्पष्ट हो जाती है। यह वेश्या मन्त्र, तन्त्र आदि साधनों के द्वारा लोगों को उनके चरित्र से भ्रष्ट करती है, अपने पाश में बांधती है और उनके माध्यम से अपना सुखमय जीवन व्यतीत करती है। ऊपरी तौर पर यह जीवन आनन्दमयपूर्वक व्यतीत होता है वस्तुत: यह पापकर्म की उत्कट स्थिति है यही कारण है उसे नरक में आना पड़ा।[34]

– चन्दा जैन आश्रम, करताराम गली, वेणी प्रसाद के सामने, निकट ठाकुरद्वारा, लुधियाना

३१. वि. सू. (दु:ख) ७.४ ३२. वही, ८.३ ३३. वि. सू. (दु:ख) ९.५
३४. वि. सू. (दु:ख) १०.२

कुशा की वैज्ञानिकता एवं वर्तमान में प्रासंगिकता

- डॉ. ऋषभ भारद्वाज

कुशा का सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, आयुर्वैदिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व है। हमारे भारतवर्ष में मैदानी रेतीली क्षेत्र, तालाब, नदियों के किनारें, खेत की मेड़ों पर प्राप्त होने वाली घास का प्रयोग अनादि काल से होता रहा है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने जिन-जिन पौधों, वनस्पतियों तथा वृक्षों को पूजनीय कहा, उनमें देवत्व स्थापित किया या प्रयोग किए पेटेंट किये थे, उनके गूढतम रहस्य को विज्ञान का क्षेत्र आज समझ पा रहा है लेकिन उनकी धरती टटोलना आज भी आसान नहीं है। कुशा से सम्बंधित कुछ ऐसे बिंदुयों पर यहां विचार किया गया है जिनसे सामान्य-जन अनभिज्ञ है।

१. कुशा शब्द की व्युत्पत्ति अर्थ एवं प्रकार-

कुशा शब्द कुश में टाप प्रत्यय जुड़ने से बनता है। इसका मूल कुशः है। इसका अर्थ है एक प्रकार की पवित्र घास जो धार्मिक अनुष्ठानों में प्राथमिक रूप से प्रयोग होती है- पवित्रार्थे इमे कुशा:। कुशा संपूर्ण भारतवर्ष के साथ-साथ विश्व के अनेक देशों में पाई जाती है और उसका अनेक रूपों में अलग-अलग प्रयोग होता है। अतएव इसे अनेक नामों से जाना जाता है। इसे देवभाषा संस्कृत में सूच्यग्र पवित्र, हिंदी में कुसा, कुंशा, उर्दू में विखदाब, असमिया में कुश, कन्नड़ में वेलिय बुद्धशशी, गुजराती में दभ, दर्भा, तमिल में दरभाई पुल, तेलगु में कुश, मलयालम में दर्भा, कुस अरबी में हलफ़ा, अंग्रेजी में halfa ग्रास कहते हैं। धर्मशास्त्रों में कुशा के दस प्रकार बतलाये गये हैं-

कुशा:काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुन्दका:।
गोधूमा ब्रह्यो मौन्जा दश दर्भा: सवल्वजा:।।

२. कुशा के पौराणिक आख्यान-

कुशा की उत्पत्ति और माहात्म्य से संबंधित पुराणों में रामायणादि काव्यों में अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं। वाल्मीकि रामायण के एक प्रसंग के अनुसार जब सीताजी धरती माँ की गोद में हमेशा के लिए जा रही थी, तब श्री रामजी दौड़कर आये उन्होंने सीताजी को पकड़ा। श्रीराम के हाथ में उनके केश मात्र आ पाये सीता समाहित हो गई। सीताजी के केशों को पवित्र धरोहर मानकर श्रीराम ने उनको कुशा नाम दिया।

रामायण के दूसरे प्रसंग के अनुसार जब सीताजी के यहाँ पुत्र लव थे। उन्हें वाल्मीकि आश्रम में छोड़कर सीता जंगल में गई थी। लव एकाएक आश्रम से कही चले गये। कुछ समय तक लव महर्षि को नहीं दिखे तब उन्होंने लव को

ढूंढ़ा और न मिलने पर वाल्मीकि ने सीताजी के आने से पूर्व ही अपनी तपश्चर्या से लव सदृश कुशा से एक पुत्र को उत्पन्न किया और सीता जी को सौंप दिया। लव के मिलने पर महर्षि ने सीताजी को पूरा रहस्य उद्घाटित किया तथा कुशा से उत्पन्न पुत्र का नाम कुश रखा। तभी से कुशा को पवित्र माना जाने लगा।

मत्स्यपुराण में भगवान् विष्णु के शरीर से कुशा की उत्पत्ति बतलायी गयी है। नारायण के शरीर से उत्पन्न होने से कुशा पवित्र और अत्यधिक उपयोगी मानी गई है। मत्स्यपुराण की कथा के अनुसार हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को समुद्र की गहराई में छुपा दिया था। तब श्रीहरि ने हिरण्याक्ष को मारने के लिए वराह अवतार धारण किया था। धरती को हिरण्याक्ष से मुक्त कराने के लिए श्रीहरि ने समुद्र की गहराई में जाकर उससे युद्ध किया। हिरण्याक्ष का वध कर पृथ्वी को तद्वत् स्थापित किया। तदुपरांत श्रीहरि ने समुद्र के पानी से भीगे शरीर से पानी हटाने के लिए जोर-जोर से हिलाया तब पानी के साथ रोम भी गिर गये जो कुशा के रूप में परिवर्तित हो गये। महाभारत में भी कुशा का उल्लेख प्राप्त होता है। गरुड़ जी अपनी माता को दासत्व से मुक्ति के लिए स्वर्ग से अमृत-कलश लाये थे, तब उन्होंने अमृत-कलश को कुशा पर स्थापित किया था। अमृत का संसर्ग होने से कुशा अमृतमयी परमपवित्र हुई।

३. कुशा का धार्मिक माहात्म्य-

भारतीय पौराणिक मान्यताओं के अनुसार कुशा को भगवान् विष्णु का ही रूप माना जाता है। इसे भगवान् श्रीहरि के रोम/लोम से उत्पन्न माना गया है। मत्स्यपुराण की एक कथा के अनुसार जब भगवान् विष्णु ने हिरण्याक्ष को मारने के लिए वराह अवतार धारण किया था और उसे मारकर माता पृथ्वी को स्थापित किया और स्वयं भी बाहर निकले थे। उसी समय शरीर के जल के साथ रोम भी गिरे थे। उन्हीं रोमों से कुशा की उत्पत्ति हुई-

विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा।
श्रद्धास्यरक्षणपालमेतत्प्राहुर्दिवौकसः।।

सनातन धर्मावलम्बी अपने अभिषेक अनुष्ठान तथा प्रत्येक धार्मिकक्रिया का प्रारंभ करने में श्रीगणेश का पूजन करते हैं। श्रीगणेश को दूर्वा बहुत प्रिय होती है सभी देवी-देवताओं को दूर्वा चढ़ाई जाती है। दूर्वा के बाद अन्य कोई घास नहीं है जिसका धार्मिक क्रिया में प्रयोग होता हो। कुशा ऐसा एकमात्र औषधि या घास है जिसका प्रयोग देवी-देवताओं की पूजा अनुष्ठान के साथ पितरों तथा प्रेत आदि योनियों के लिए किए जाने वाले कृत्यों में भी होता है, इसी से इसके महत्त्व का स्वतः प्रतिपादन होता है।

प्रत्येक धार्मिक क्रिया के प्रारंभ में उसकी पवित्री या अंगूठी धारण की जाती है उसके बाद ही अनुष्ठान आदि प्रारंभ होते हैं। यज्ञमंडप हो, मंदिर हो या घर में होने वाली कोई भी धार्मिक-क्रिया में पवित्र गंगाजल, पवित्र नदियों के जल को कुशा औषधि से छिड़ककर पवित्र किया जाता है। श्राद्ध आदि कृत्यों में भी पवित्री धारण की जाती

है। पुराण कहते हैं कि कुशा की पवित्री धारण करने से साधक या यजमान का तन-मन पवित्र हो जाता है और वह बाहरी बाधाओं से मुक्त रहता है। कुशा की पवित्री धारण किए बिना कोई भी अनुष्ठान सफल नहीं होता है, क्योंकि कुशा भगवान् नारायण के लोम से उत्पन्न है। उनके वराह अवतार में श्रीहरि के शरीर पर कुशा का चित्र रहता है अर्थात् कुशा साक्षात् नारायण का प्रतिरूप मानी गई है-

दर्भा विभूतिर्मे ताक्ष्यं मम रोमसमुद्भवा।
अतस्तत्स्पर्शनादेव स्वर्गं गच्छन्ति मानवा:।।

अर्थात् मेरे रोमों से उत्पन्न हुई कुशा, मेरी ही विभूति है, अतएव उसके छूने से ही मनुष्य स्वर्ग को चले जाते हैं। कुशा में त्रिदेवों का वास है। इसके जड़ में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी, मध्य में विष्णु जी और अग्रभाग में संहारकर्ता एवं कल्याणकर्ता शंकर स्थित हैं। अतएव कुशा साक्षात् देवरूप है जिसे ऋषियों ने गहन अनुसंधान करके विविध प्रयोगों में स्वीकार किया-

कुशमुले स्थितो ब्रह्मा, कुशमध्ये जनार्दनः।
कुशाग्रे शङ्करो देवस्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः।।

अतएव कुशा परम पवित्र मानी गयी है। इसे बार-बार प्रयोग करने पर भी अपवित्र नहीं होती। अग्नि,मन्त्र, तुलसी, ब्राह्मण और गौ ये भी अपवित्र नहीं होते हैं। इसे क्रोध शामक और अशुभ निवारक बतलाया गया है-

अतः कुशा-वह्निमन्त्र-तुलसी-विप्रधेनवः।
नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनःपुनः।।

४. आयुर्वैदिक माहात्म्य-

कुशा जितनी पूजा-पाठ में उपयोगी है उससे कहीं अधिक आयुर्वेद में भी प्रयोग होती है। कुशा के धार्मिक महत्त्व के विश्लेषण के बाद इसके आयुर्वैदिक महत्त्व पर विचार करते हैं। हमारे भारतवर्ष में कुशा का प्रयोग आयुर्वेद में प्राचीन काल से होता रहा है। चरकसंहिता के मूत्र-विरेचनीय तथा स्तन्यजन्य आदि महाकाषायों में इसकी गणना है। कुशा का वर्णन आयुर्वेद के साथ निघंटु तथा सुश्रुतसंहिता में भी है। यह मीठा, कड़वा, ठंडी तासीर का छोटा, स्निग्ध, वात-पित्त कम करने वाला पवित्र मूत्रविरेचक होता है। यह मूत्र संबंधी बीमारियों पथरी या अश्वरी, प्यास या तृष्णा प्रदर, रक्तपित्त शर्करा मूत्राघात, रक्त दोष, विष का प्रभाव विसर्प या हार्पिज, जलन या दाह, सांस की बीमारी, कमला या पीलिया, छर्दी या उल्टी मूर्छा बेहोशी बुखार ज्वर में लाभकारी होती है। स्तन-वृद्धि में इसकी शीतल जड़ का प्रयोग अचूक रहता है। अगणित गुणकारी कुशा का विविध रोगों के निदान हेतु प्रयोग किया जाता है जिसके कुछ प्रमुख रोगों के उपचार यहाँ प्रस्तुत हैं। आधुनिक वनस्पति विज्ञान में कुशा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है इसे Eragrostic Cynosuroides नाम दिया गया है।

१. ज्यादा प्यास लगना- हम लोग देखते हैं कि व्यक्ति को किसी बीमारी के कारण ज्यादा प्यास लगती है। मुँह सूखता है। इसके निदान के लिए कुशा बहुत ही उपयोगी मानी गई है। इसकी

जड़ बहुत शीतल होती है इसे निकालकर सुपारी की तरह मुंह में चूसने से प्यास कम हो जाती है।

कुशा की जड़ बरगद के पत्ते नींबू का पत्ता वेतस का पत्ता कांस की जड़ मुलेठी और अमृत बल्ली को समान मात्रा में मिलाकर रस निकालकर उसे पकाकर पीने से तृष्णा रोग हमेशा के लिए मिट जाता है।

२. **दस्त**- एकाएक दस्त होने पर कुशा रामबाण औषधि का काम करती है। कुशा की जड़ के रस को २० ग्राम दिन में दो बार लेने से आमातिसार बंद हो जाता है।

३. **उल्टी/प्रवाहिका**- कुशा के जड़ के रस को दो दो चम्मच दिन में तीन बार लेने से प्रवाहिका में पूर्णतया लाभ मिलता है।

४. **बबासीर**- कुशा की जड़ का २ ग्राम काढ़ा और ४ ग्राम बला के रस को चावल के धोवन के साथ सेवन करने से प्राइल्स या प्रदर रोग दोनों में लाभ होता है।

५. **किडनी**- कुश का सेवन पथरी को निकालने में मदद करता है। ५ ग्रम कुशा के रस को घी के साथ सेवन करने से अश्वरी या पथरी टूट-टूट कर निकल जाती है।

६. **मूत्र आघात**- रुक-रुक करके पेशाब आना मूत्र आघात कहलाता है। यह व्यक्ति को बहुत पीड़ा देता है। कुशा के साथ नल, कांस, तथा इक्षु के काढ़े को मिलाकर पीने से मूत्र आघात में लाभ होता है।

७. **रक्त प्रदर**- सम मात्रा में कुशा और बला की जड़ को चावल के धोवन से पीसकर ५ से ६ ग्राम पेस्ट करने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

८. **स्तनवृद्धि**- कुश, कास, गुन्द्रा, इटकर आदि स्तन जनन महाकाशाय की १० औषधियों के जड़ का काढ़ा १० से २० ग्राम पीने से स्तन-वृद्धि होती है।

९. **अल्सर घाव**- कुश के जड़ के काढे में त्रिफला, खांदरसार में मिलाकर पीने से अल्सर का घाव ठीक हो जाता है। कुश को जलाकर बनी भस्म को घी में मिलाकर लगाने से घाव जल्दी भरता है।

१०. मोटापा कम करना- कुश की जड़ का रस, आँवले का रस सावा के चावलों से बने जूस को पीने से शरीर का मोटापा तथा रूखापन खत्म हो जाता है।

११. रक्तपित्त- नाक या कान से अनायास खून निकलना रक्तपित्त कहलाता है। पंचमुल कुश कास नल दर्भ तथा इक्षु का रस या काढ़ा १० से २० ग्राम सेवन करने से रक्त पित्त में लाभ होता है।

१२. अस्थमा- कुशा की घास या जड़ का काढ़ा बनाकर आधा कप पीने से अस्थमा में लाभ होता है तथा फेफड़ों को मजबूत करता है।

५. कुशा का वैज्ञानिक महत्त्व-

कुशा के धार्मिक आयुर्वैदिक महत्त्व के विश्लेषण के बाद हम कुछ वैज्ञानिक तथ्यों पर विचार करते हैं जिन्हें आधुनिक वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया और उसका उपयोग भी कर रहे हैं।

१. **प्यूरीफिकेशन एजेंट**- कुशा में

प्यूरीफिकेशन एजेन्ट रहते हैं। कुशा जलीय पौधा है इसमें पानी-आक्सीजन अधिक मात्रा में रहते हैं। इसलिए इसे पूजा-पाठ में भी प्रयोग किया जाता है। तमिलनाडु की शास्त्र-एकेडमी की रिसर्च में पता चला हे कि कुशा में नेचुरल प्रिजर्वेटिव से परिपूर्ण रहती है।

इसके आस-पास बहुत ही पवित्र वातावरण रहता है इसलिए ऋषि-मुनि भी अनादिकाल से इसके आसन पर पूजापाठ करते थे। अपनी कुटिया के ऊपर उसकी छत बनाते थे इससे बने वस्त्र भी पहनते थे।

३. एन्टी ओबेसिटी- इसमें एंटी ओबेसिटी, एंटीआक्सीडेंट और एनालजेसिस कंटेट बहुत मात्रा में रहते हैं इस कारण इसका प्रयोग अनेक दवाईयों में आज भी होता है। एंटी ओबेसिटी होने से या ब्लड शुगर मैनेज करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एनालजेसिड होने से फेफड़ों को स्वस्थ रखने में मदद करता है।

६. कुशा का सामाजिक महत्त्व-

हमारे भारतवर्ष में कुशा का विविध रूपों में प्रयोग होता है। धार्मिक क्रियाओं के साथ आयुर्वेदिक प्रयोगों की ऊपर चर्चा की जा चुकी है। कुछ दैनिक उपयोगी क्रियाओं में आज भी अनेक रूपों में प्रयोग होता है।

हमारे देश की कुल आबादी को ६९ प्रतिशत लोग आज भी गांव में बसते हैं। गांव के निवासियों का मुख्य कार्य कृषि है। खेतों पर रहने के लिए झोपड़ी बनाई जाती है उसकी छत बनाने के लिए कुशा विछाई जाती है। इसमें सागौन के, छेवले के पत्ते भी लगाये जाते हैं। झोपड़ी की दिवारों में लकड़ियों में बांधकर अंदर मिट्टी से छापा जाता है जो बहुत ही ठंडक देती है। रस्सी बनाकर विविध रूपों में प्रयोग करते हैं। जैसे गेहूँ काटकर जो गठरे बनाये जाते हैं उन्हें बांधने में उपयोग करते हैं।

वर्तमान समय में भारत के साथ दुनिया के अनेक देश जो विकसित हो चुके हैं वो भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। हमारे प्राचीन विज्ञान का भरपूर प्रयोग कर रहे हैं। अमेरिका जैसे देश बैठने के लिए कुर्सियां सौफासेट बनाने में कुशा का भरपूर प्रयोग कर रहे हैं। उपर्युक्त विश्लेषण उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भारतीय वनस्पतियों में जहाँ-जहाँ देवत्व है वह वैज्ञानिक तथ्यों से परिपूर्ण है। आज कुछ वनस्पतियां लुप्त होती जा रही हैं उन्हें संरक्षित करना समाज का दायित्व है। कुशा लुप्त-प्राय: है उसे पुन:स्थापित करने के लिए समाज जागरूक होना चाहिए।

- संस्कृत-विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भगवान् महावीर : अहिंसा के अग्रदूत

- डॉ. निर्मल कौशिक

विश्वशान्ति के अग्रदूत, महान् क्रान्तिकारी सत्य और अहिंसा के अमरदूत, तीर्थंकर महावीर स्वामी महावीर एक कालजयी व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनका तीर्थकरकाल भारतवर्ष में लोक-शक्ति का अभ्युदयकाल माना जाता है। उनके अवतरण के समय भारत में मन्त्रवादी तन्त्रवादी और हिंसक प्रवृत्तियों में विश्वास रखने वाली शक्तियों का बोलवाला था। समाज़ में अनाचार की वृद्धि हो रही थी। यज्ञों में पशुबलि देने की प्रथा भी चरम पर थी। स्त्रियों को धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने की अनुमति नहीं थी। समाज में शूद्रों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उन्हें समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। उनसे अमानवीय व्यवहार किया जाता था। समाज में इस प्रकार की विषमता और अन्याय-व्यवस्था से आहत होकर स्वामी महावीर ने अपने तप और ज्ञान के बल पर अरिहन्त बन कर समाज में व्याप्त अत्याचारों के प्रति सिंहनाद किया। उन्होंने पशुहिंसा के प्रति अपनी बुलन्द आवाज उठाई। सामाजिक समता का उपदेश देते हुए उन्होंने कहा शूद्र में भी वही आत्मचेतना है जो ब्राह्मण में है। उनके अनुसार मनुष्य कर्म से महान् होता है जन्म से नहीं। सत्य के अनुयायी के लिए पहला नियम है कि वह अनाग्रही बने। किसी भी धर्म व विचार पर आक्षेप न करे। उनका अनादर न करे। जाति, लिंग, देश, भाषा, रंग व नसल के भेद मानव द्वारा निर्मित हैं मूलतः मानवमात्र सभी एक समान है।

स्वामी महावीर जी के अनुसार जीवों पर दया करना श्रेष्ठ पुरुषों का उत्तम लक्षण है। संसार के सभी प्राणी जीवित रहना चाहते हैं। सभी ग्रन्थों ने हिंसा का त्याग करने का उपदेश दिया है। दया धर्म की जननी है। 'घम्मस्य जननी दया'। अतः स्वामी जी ने दया को धर्म की माता कह कर हिंसा को त्यागने की बात कही है।

अपने तप और त्याग के अनुभव से उन्होंने अपरिग्रह का सन्देश दिया है। परिग्रह अनेक लालसाओं को जन्म देता है। लालसा ही वस्तुओं का संग्रह करने का मूल कारण हे और इसमें निरन्तर वृद्धि होती रहती है। अतः मानव को अपरिग्रह का मार्ग अपनाना चाहिए। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए। उनका अहिंसा का सन्देश भी मानवकल्याण के लिए ही है। ज्ञानी पुरुष के ज्ञान का सार यही है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। आज जंगल तक के सभी जीव-जन्तु मनुष्य से आतंक-ग्रस्त हैं। बढ़ती हिंसा के इस दौर में स्वामी महावीर के

अहिंसा के सिद्धान्त और विचार अधिक प्रासंगिक हो रहे है। अगर उनके अहिंसावादी सिद्धान्त और विचार को समाज में भुलाया नहीं जाता तो आज विश्व में आतंकवाद और हिंसा इतने पांव नहीं पसारते। हमारा क्या अधिकार है कि हम किसी प्राणी को दण्डित या प्रताड़ित करें। उनके बहुमूल्य सिद्धान्त अहिंसा अपरिग्रह और अनेकान्त आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। उनके कथन आज भी मानव समाज के लिए उतने ही सार्थक और महत्वपूर्ण हैं जितने उनके अपने युग में थे।

वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों परम्पराओं में अनेक बातें समान रूप से पाई जाती हैं। जीवन के लिए उपयोगी और दुराचार और अनैतिकता से दूर रहने के लिए सभी धर्माचार्यों ने सत्य, अहिंसा, अस्तेय तथा ब्रह्मचर्य के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है। इसके अतिरिक्त वैदिक धर्म मे दान को, बौद्ध धर्म में मादक वस्तुओं के त्याग को तथा जैन धर्म में अपरिग्रह को भी महत्त्व दिया गया है। जिस प्रकार वैदिक धर्म में सच्चिदानन्द कहने से परमात्मा का बोध होता है उसी प्रकार जैन धर्म में वीतराग तथा बौद्धधर्म में बुद्ध कहने से होता है। जैन धर्म में अपरिग्रह की न केवल सूक्ष्मांतिसूक्ष्मतम विवेचना की अपितु इस अवधारणा का ऐसा विकास किया जो भारतीय चिन्तन की ही नहीं अपितु पूरे विश्व की अमूल्य धरोहर बन गया।

किसी भी महापुरुष के जीवन में एक उदारता होती है। उसमें परोपकार की भावना होती है। उसमें विघटन पैदा करने की भावना नहीं होती। वह अपने आचार-विचार और व्यवहार से बिखरे समाज को एकत्रित करके लोकसंग्रह करके एकता का पाठ पढ़ाता है। इसी लोकसंग्रह के द्वारा ही राष्ट्र में धर्म आदि विविध क्षेत्रों में विकास होता है। जिसका लाभ मानवसमाज को ही होता है।

स्वामी महावीर स्वामी के जीवनकाल में भारतीय समाज में बिखराव और अपनी-२ डफली, अपना-अपना राग-का वातावरण था। जातिवाद, भाषावाद, स्वामित्ववाद, सामाजिक बिखराव के मूल कारण थे। जातिवाद के आधार पर समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र आदि चार वर्ग थे। उन्होंने व्यक्ति के जन्म पर कर्म का आधिपत्य स्थापित कर एक सामाजिक क्रान्ति का आह्वान किया। संस्कृतभाषा पर ब्राह्मणों का अधिकार समाप्त करने के लिए उन्होंने अपने उपदेश व सन्देश तत्कालीन समाज में व्याप्त जनभाषा प्राकृत में दिए। इससे प्राकृत-भाषा विकसित और प्रफुलित हुई ! बहुत से जैनाचार्यों ने इस प्राकृतभाषा में अपने अमूल्य ग्रन्थ भी रचे। उस समय की दासप्रथा को देखते हुए उन्होंने धनीवर्ग को एक विचार दिया कि अपने आश्रित दास को भी अपने परिवार का सदस्य मानकर उससे समानता का व्यवहार करें। अर्थप्राप्ति का

मूल श्रम है। अर्जित सम्पत्ति पर श्रमिक का मौलिक अधिकार है। राजपुत्र होकर भी उन्होंने राजसुख नहीं भोगा। उनका मानना है कि राष्ट्र या समाज की सम्पति सब की होती है। परपीड़ा को दूर करने के लिए ही उन्होंने निवृत्ति का मार्ग अपनाया। कहा भी है **परोपकाराय संतां विभूतयः** अर्थात् सज्जनों का ऐश्वर्य परोपकार के लिए ही होता है। विनम्रता मनुष्य का सुन्दर आभूषण है। अहंकार से मनुष्य कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता। आपने पूरे राज्यवैभव को ठुकराकर भिक्षापात्र ग्रहण किया।

स्वामी जी की दृष्टि में पशुता, अज्ञानता और दुर्बलता समाज के लिए तीनो ही घातक हैं। जीवन में किसी भी संकट का सामना निर्भयता और शालीनता से करना चाहिए। युद्धों से शत्रु तो नष्ट हो सकते हैं लेकिन शत्रुता नहीं। कोई भी राष्ट्र अहिंसा के मार्ग को अपनाकर समृद्ध और शक्तिशाली बन सकता है। दीन-दुखियों व अभावग्रस्त लोगों की सेवा ही वास्तविक धर्म है। धर्म उनकी झोंपड़ियों में निवास करता है।

स्वामी जी ने यह समझाने की कोशिश की कि संसार के जितने भी प्राणी हैं उन्हें अपनी आत्मा के समान जानो। जैसा कि कहा गया है **आत्मवत् सर्वभूतेषु**। उन्होंने बताया कि पाप से घृणा करो पापी से नहीं। दूसरों को दुःख मत दो बल्कि दूसरों के लिए दुःख सहो। अन्याय करना अगर पाप है तो अन्याय सहना महापाप है। मन वचन और कर्म से किसी का भी बुरा मत करो।

स्वामी जी ने अपने आध्यात्मिक और तप-साधना से आत्मा को ही ईश्वर माना है। ईश्वर का अंश नहीं। उन्होंने कहा हर जीव में परमात्मा विद्यमान है। तुम स्वयं परमात्मा हो। स्वयं को जीतने का प्रयास करो। **अप्पणमेव झुज्झहि** अर्थात् आत्मा से युद्ध करो। क्षमा से क्रोध को जीतो। क्षमा ही सबसे बड़ा आभूषण है। **उवसमेण हणे कोई**- क्षमा से क्रोध को जीतकर आप अपने को जीतकर ही विश्व को जीत सकते हो। विनम्रता से मान को सरलता से माया को और सन्तोष से लोभ को जीतो। स्वामी जी के अनुसार सदाचार के मार्ग पर चलता हुआ जीव ही स्वयं का मित्र और कुमार्ग पर चलता हुआ अनाचारी जीव ही स्वयं का शत्रु है।

आज हम अपने लक्ष्य से भटक गये हैं। हम अपने जीवन का सही उपयोग करके अपने गुणों को पहचानने में असमर्थ सिद्ध हुए हैं। हम अपने अन्दर असीम ज्ञान होते हुए भी अज्ञान के अन्धकार में भटक रहे हैं हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर जाना है। हम दिग्भ्रान्त हो गए हैं पूर्व की ओर जाने की अपेक्षा हम पश्चिम की ओर बढ़ रहे हैं। हम संकीर्ण मानसिकता के कारण क्रोध, घृणा, प्रतिशोध, ईर्ष्या, द्वेष, ऊंच-नीच, आदि की दीवारें खड़ी कर एक-दूसरे के शत्रु बन गए हैं। विनाश की सामग्री अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे कर रहें हैं। जब तक हम आत्मा के

स्वरूप को नहीं समझते तब तक हम दूसरे को नहीं समझ सकते। संकुचित विचारधारा और स्वार्थ की दलदल से निकल कर ही हम विश्व में सुख और शान्ति का साम्राज्य खड़ा कर सकते हैं। ज्योतिपुञ्ज महावीर स्वामी ने अपने अनुभवों से मानव को विश्वशान्ति को स्थापित करने के लिए लोककल्याण के जो उपदेश दिए वह आज भी उपादेय हैं। उन्होंने समाज की विषम परिस्थितियों में भी अहिंसा, सत्य, समता, मैत्री, प्रेम, त्याग व सदाचार आदि का मानव-जीवन में महत्त्व समझाया। उन्होंने निर्भय होकर यह उद्घोष किया कि मानव-जीवन का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता है। वही मुक्ति का पूर्व रूप है इसी की प्राप्ति से ही ईश्वर की प्राप्ति हमारा चरम लक्ष्य है। स्वामी जी ने अपने तप की साधना से जो निष्कर्ष निकाला वह समाज में वितरित किया ताकि समाज मे सुख व शान्ति का वातावरण स्थापित हो सके। उन्होंने अपने सन्देश को अपनी वाणी के माध्यम से तत्कालीन जनसामान्य की प्राकृत-भाषा में इसलिए रचा ताकि उनकी वाणी जन-२ तक पहुँच सके। उनका महत्त्वपूर्ण सन्देश था कि

धम्मों मंगलं मुक्किहु अहिंसा सजमो तपो
देवावितं नमंसति जस्स धम्मे सयामणो।।

अर्थात् अंहिंसा, संयम, तप, यह सब उत्कृष्ट धर्म के अंग हैं। मोक्ष के स्वर्गद्वार हैं जिस जीव के मन में यह गुण अर्थात् सद्गुण बन धर्म के रूप में विद्यमान हों उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

महावीर स्वामी ने अपने समाज की विकृतियों और विषमताओं से दुखित होकर जो चिन्तन और मनन कर सामाजिक कुरीतियों को दूर कर सत्य और अहिंसा का मार्ग प्रशस्त किया है वह अद्वितीय और अतुलनीय है। हम उनके बताए मार्ग पर चलकर तनाव और भटकाव का मार्ग त्यागकर सुख, शान्ति और सौहार्द्र का वातावरण स्वत: तैयार कर सकते हैं।

- 163, आदर्श नगर, ओल्ड कैंट रोड., फरीदकोट - 151203
मो. 9915702843

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

वैदिक संस्थाओं द्वारा उपेक्षित परमात्मा का एक वैदिक नाम

- श्री रामशरण युयुत्सु

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में उल्लेखित ऐसे एक सौ वैदिक और लौकिक नाम हैं, जिनका धात्वर्थ और व्युत्पत्ति का विश्लेषण कर उनसे परमेश्वर का ही ग्रहण होने से उनको परमात्मा-संज्ञक होने की ही संज्ञा दी गई है, जैसे ओ३म्, खम, ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, परमेश्वर, भगवान्, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर रुद्र, इन्द्र, प्राण, भूमि, पृथ्वी, आदित्य, सविता, शेष, मंगल, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शनैश्चर, राहू, केतू, गणेश, गणपति, देव, देवी, श्री, सरस्वती, लक्ष्मी, अग्नि, वरुण, वसु, विराट्, कुबेर, वायु, आकाश, प्रजापति आदि।

इन एक सौ नामों में परमात्मा बोधक एक प्रमुख वैदिक नाम का समावेश नहीं है। यथार्थ में परमात्मा का ही पर्याय वह नाम ''विश्वकर्मा'' है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ''सृष्टि-विद्या विषय'' प्रकरण में आये मंत्र ''**अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मण समवर्त्तताग्रे** (१७) का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द ने विश्वकर्मा नाम के परमात्मा होने की पुष्टि इस प्रकार की है- **''विश्वं सर्वं कर्म क्रियमाणमस्य स विश्वकर्मा''। तस्य परमेश्वरस्य सामर्थ्यमध्ये कारणाख्येऽग्रे सृष्टेः प्राग्जगत् समवर्तत वर्तमानमासीत्-** और भाषार्थ में लिखा है- ईश्वर ने प्रकृति से लेकर घास पर्यन्त जगत् को रचा है। इससे सब पदार्थ ईश्वर के रचे होने के कारण उसका नाम विश्वकर्मा है। अर्थात् समस्त जगत् का रचनाकार विश्वकर्मा है- विश्वकर्मा नाम के उल्लेख सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास (वेदेश्वर विषय) तथा अष्टम समुल्लास (जगत् की उत्पति, स्थिति और विलय) में भी नहीं हुआ है। ऐसी अवस्था में आर्य-जगत् के मनीषी यदि भगवान् विश्वकर्मा और विश्वकर्मावंशी ऋषियों की परम्परा से अपरिचित ही बने रहे, तो अस्वाभिविक नहीं हैं।

वेदों के अनेक मंत्रों में विश्वकर्मा का उल्लेख हुआ है। अथर्ववेद वेदकांड २ सूक्त ३५ विश्वकर्मा सूक्त है। इस सूक्त के मंत्र-द्रष्टा ऋषि अंगिरा हैं और देवता (प्रतिपाद्यविषय) विश्वकर्मा है। यथा-

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो
अन्वतप्यन्त धिष्ण्या:।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां
कृणवद् विश्वकर्मा।।

भावार्थ- जो लोग नाना भोगों में लिप्त रहकर भौतिक वृद्धि से ही संतुष्ट रहते हैं, यज्ञीय उदात्त भावनायें जिन्हें कष्टकर प्रतीत होती हैं और जो उसकी समाज में गिराने वाली दुःखद स्थिति है। भगवान् विश्वकर्मा उनको अपना सम्मानित स्थान प्राप्त करने की प्रेरणा दें।

ऋग्वेद मंडल १० के सूक्त ८१ और ८२ विश्वकर्मा सूक्त कहलाते हैं। इन सूक्तों के १४ मंत्रों के द्रष्टा ऋषि भौवन विश्वकर्मा हैं और देवता भी विश्वकर्मा हैं। मंत्रद्रष्टा ऋषि देवता एक ही हो यह सौभाग्य विश्वकर्मा, अग्नि और बृहस्पति को ही मिला है।

अंगिरस् गोत्रज विश्वकर्मावंशी ऋषि-परम्परा में आदि शिल्पाचार्य महर्षि भौवन विश्वकर्मा हुये हैं। महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वर्णित चार उपवेदों में "अर्थवेद" अर्थात् शिल्प-शास्त्र के प्रतिपादन में रची गई संहितायें, ऋषि विश्वकर्मा, त्वष्टा, देवज्ञ और मय कृत हैं। ये सारे ऋषिगण विश्वकर्मा वंशज थे। "(ग्रन्थ प्रामाण्य विषय" देखें) "**अर्थवेदश्च विश्वकर्मा त्वष्टा (देवज्ञ) मयकृतश्च संहिताख्यो ग्राह्यः**"।

वेदों के मंत्र किसी न किसी विद्या के ज्ञान का बीजरूप में कथन करते हैं। इस बीजरूप ज्ञान का यथावत् साक्षात्कार कर उस ज्ञान को मानवमात्र के कल्याण के लिये साधनयुक्त बनाने का अविश्रांत श्रम जिन ऋषियों ने किया उन ऋषियों के नाम मंत्रों में प्रतिपादित विषय (देवता) वेदमंत्रों के साथ ही लिखा हुआ मिलता है जैसे ऋग्वेद अष्टम मंडल सूक्त ४७, ऋषि त्रितआप्त्य। ऋग्वेद नवम मंडल सूक्त १०३, ऋषि द्वित आप्त्य। ऋग्वेद दशम मंडल सूक्त १ से ७ ऋषि त्रित आप्त्य। ऋग्वेद दशम मंडल सूक्त १५७ मंत्र १ से ५ ऋषि भौवन, आप्त्य, ऋग्वेद दशम मंडल सूक्त ८१ और ८२ ऋषि भौवन विश्वकर्मा। ये आप्त्य, एकत् द्वित त्रित और भौवन सारे ऋषि अंगिरा वंशज अंगिरस् ऋषि हुये हैं अंगिरा के पुत्र आप्त्य, आप्त्य के पुत्र एकत, द्वित, त्रित और भौवन के पुत्र विश्वकर्मा। आदि शिल्पाचार्य महर्षि विश्वकर्मा अंगिरा के प्रपौत्र थे।

आश्वलायन (सर्वानुक्रमणि का) व्याख्याकार षड्गुरु भाष्य में इसकी पुष्टि इस प्रकार मिलती है- "**भुवनो नाम आप्त्य पुत्र इति। एवं च भुवनपुत्रत्वेन विश्वकर्मणः अंगिरवंशजत्वं ऋषिगौत्रत्वम् च**।

भुवन नाम आप्त्य पुत्र का है, भुवन का पुत्र होने के कारण विश्वकर्मा का अंगिरस् वंश और गौत्रत्व है। भगवान् विश्वकर्मा के परमात्मा संज्ञक होने के अनेकों प्रमाण वेदों में उपलब्ध हैं। महर्षि दयानन्द के मन्तव्य के अनुसार जहां-जहां स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, सृष्टिकर्ता आदि विशेषण हों, वही नाम परमात्मा संज्ञक होता है। यथार्थ में विश्वकर्मा नाम ही मूल मंत्रों में स्पष्ट अर्थों में आया है, अन्य नामों के अर्थ प्रछन्न हैं।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे आर्यसमाजी बन्धुओं और वैदिक विद्वानों ने

अपनी पूर्वाग्रह-ग्रसित मानसिकता के कारण सर्वमान्य रूप से ईश्वर के पर्याय के लिए परमेश्वर, जगदीश्वर, परमात्मा आदि नामों को ही अपनी स्वीकृति दी हुई है।

मैंने अपने जीवनकाल में आर्यसमाज के अनेकों साप्ताहिक सत्संगों, वैदिक गोष्ठियों, वैदिक उत्सवों, वैदिक प्रवचनों और वैदिक शिविरों में भाग लिया है। किन्तु किसी भी अवसर पर किसी भी आर्यविद्वान् से परमात्मा के संदर्भ में विश्वकर्मा नाम नहीं सुना। मेरे जैसे हजारों अन्य विश्वकर्मावंशी आर्यसमाज से जुड़े हुए हैं। अनेकों उनमें शास्त्री हैं, विद्वान् मनीषी हैं, प्रचारक हैं किन्तु लगभग सभी अपनी जड़ों से अपरिचित, अपनी ऋषिपरम्परा से अनभिज्ञ। आर्य समाजों में यह स्थिति क्यों ? क्या कोई वैदिक विद्वान् मेरी इस जिज्ञासा का समाधान करने का कष्ट करेंगे ?

आज का युग ज्ञान, विज्ञान और शिल्प का युग है। एक तरह से पुरातन में किसी युग में रहे शिल्पज्ञ, अंगिरस् और विश्वकर्मा ऋषियों जैसा युग। ज्ञान-विज्ञान और शिल्प के क्षेत्र में आज भारत पुनः संसार के सर्वश्रेष्ठ होने के पद पर आसीन हो चुका है। संसार के सारे राष्ट्रों ने भारत की ज्ञानप्रतिभा को स्वीकार कर लिया है। उसकी प्रतिभा का प्रकाश "शिल्प ज्ञान" में हुआ है। "सूचना शिल्प" Information Technology में अग्रणी भारतीय प्रतिभा सारे संसार में छा गई है। सारे देशों ने भारत के इस क्षेत्र के प्रतिभावानों के लिए अपने देश के द्वार खोल दिये हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के भारतीय निष्णातों की, जापान, चीन, रूस, इटली, जर्मनी, फ्रांस, इंगलैड, कनाडा, और अमेरिका में भारी मांग है। इस मांग की आपूर्ति पूर्णरूप से न करवा पाने के कारण अनेक देशों ने अपनी अरबों-खरबों के प्रस्थापित सूचना प्रौद्योगिकी संस्थानों की शाखा भारत में ही खोलना प्रारंभ कर दी है। भारत आज जगत्-गुरु बन चुका है। इस सत्य से कितने आर्यसमाजी बन्धु परिचित हैं और भारत को यह पद दिलाने में हमारे आर्य समाजों और गुरुकुलों का कितना योगदान है? हमें तो अभी इसकी जानकारी तक नहीं है। यह शिल्प होता क्या है ?

- श्री अंगिरा शोध संस्थान, 390/5, शान्तिनगर, पटियाला चौक,
जीन्द - 126102 (हरियाणा) मो. 9416387432

जातकर्म संस्कार का काल एवं विधि-विधान

- श्री नितिन शर्मा

जातकर्म एवं मेधाजनन संस्कार :

जात शब्द का अर्थ हैं जन्म लेना, जो कि जन् धातु से निष्पन्न हुआ है। ऋग्वेद के एक मंत्र में 'जन्मन्' शब्द प्राप्त होता है[१], वहां उस शब्द का व्यवहार पुत्र अर्थ में हुआ है।[२] 'ऋग्वेद' के ही अन्य मंत्र में **शिशुं न जातम्** वाक्य का प्रयोग हुआ है, जो शिशु के जन्म का द्योतक हैं।[३] पारस्कर-गृह्यसूत्र की भूमिका में लिखा है कि **जात** अर्थात् उत्पन्न हुए पुत्र का संस्कार जातकर्म-संस्कार कहलाता है।[४] जन्म के पश्चात् शिशु की नासिका एवं मुखसहित सम्पूर्ण शरीर को स्वच्छ कर स्नान कराना चाहिए। **पारस्करगृह्यसूत्र** में इसे सोष्यन्ती कर्म कहा गया है।[५] अन्ततः कहा जा सकता है कि सन्तति के जन्म के बाद संस्कार रूप में जो कर्म किया जाता है, वह जातकर्म कहलाता है।[६]

काल (जातकर्म का काल):

वाधूलगृह्यसूत्र के अनुसार यदि सन्तति के रूप में पुरुष उत्पन्न हो तभी इस संस्कार को करना चाहिए।[७] इसी गृह्यसूत्र में कहा गया है कि पुरुष के उत्पन्न होने पर इस संस्कार को करना चाहिए तथा स्त्री के उत्पन्न होने पर जातकर्म संस्कार नहीं करना चाहिए।[८] इसी बात का अनुसरण करते हुए इसी गृह्यसूत्र के परवर्ती ग्रन्थ **वाधूलगृह्या-गमवृत्तिरहस्यम्** में भी कहा गया है कि यदि गर्भ से पुरुष उत्पन्न हो तब यह संस्कार करना चाहिए, स्त्री उत्पन्न होने पर इस संस्कार को नहीं करना चाहिए।[९]

इसी गृह्यसूत्र में काल के विषय में कहा गया है कि सूत्तिकागृह में प्रवेश करने के बाद पिता को हाथों से जातकर्म संस्कार करना चाहिए।[१०] **पारस्करगृह्यसूत्र** के अनुसार जन्म ग्रहण किए शिशु के नाल-छेदन के पश्चात् जातकर्म करना चाहिए। **शाङ्खायनगृह्यसूत्र** के अनुसार जिस कुमार ने माता के पेट से जन्म लिया है, उसका जातकर्म उसी समय करना चाहिए। यह संस्कार शिशु का पिता ऋचाओं के उच्चारण के साथ करे।[१२] **गोभिल गृह्यसूत्र** के अनुसार सूतिका-

१. ऋ. २.२६.३
२. वही, २.२६.४
३. वही, ३.१.४
४. पा. गृ. सू. भूमिका, पृ. ७
५. वही, १.१६.१
६. हि. ध. सो. सं. र. पृ. ५४
७. वा. गृ. सू. १.५.१
८. वही, १.५.१
९. वा. गृ. वृ. र. २.१६१
१०. वा. गृ. सू. १.५.२
११. शां. गृ.सू. १.२४.१
१२. पा. गृ. सू. १.१६.३

गृह में रहने वाली धाई जब बोल उठे कि लड़का पैदा हुआ है, जो पिता को उसी समय बोलना चाहिए कि नाभि से लगी हुई नाड़ी काटो और स्तनपान कराकर उसकी रक्षा करो।[१३] अत: जिस दिन शिशु पैदा हो जातकर्म उसी दिन करना चाहिए। **कौशिकसूत्र** में **यस्ते स्तन** इस मंत्र का उल्लेख मिलता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि शिशु के जन्म वाले दिन ही इस संस्कार को करना चाहिए।[१४] आचार्य वशिष्ठ का मत है कि जिस मुहूर्त में शिशु का जन्म हो उसी समय जातकर्म संस्कार करना चाहिए।[१५] आचार्य जैमिनी कहते हैं कि नालछेदन के पश्चात् ही सूतक होता है तथा जातकर्म के लिए यही समय उपयुक्त है।[१६] इसी संस्कार के विषय में वैजवाप कहते हैं कि जन्म के अनन्तर ही जातकर्म को यथाविधि करना चाहिए।[१७] लगभग सभी गृह्यसूत्रों के अनुसार नाभिबन्धन के पूर्व ही यह संस्कार सम्पन्न होता है।[१८] नारदसंहिता में इस संस्कार के काल का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि-

तस्मिञ्जन्ममुहूर्तेऽपि सूतकान्तेऽपि या शिशोः।
जातकर्म प्रकर्त्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम्।।[१९]

भावार्थ- जन्म होते ही अथवा सूतक समाप्ति के बाद पितरों का पूजन आदि कार्य सम्पन्न करके शिशु का जातकर्म संस्कार करना चाहिए। **बृहद्वहकड़ाचक्रम्** के अनुसार यह संस्कार मृदु एवं ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में तथा गुरु एवं शुक्र के केन्द्र में (कुण्डली के प्रथम, चतुर्थ, सप्तम् एवं दशम भाव) रहने पर करना चाहिए।[२०] इन सब तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कार के लिए प्राय: एक-जैसा समय नियत था लेकिन परवर्ती लेखकों के अनुसार किसी कारणवश निश्चित समय बीत जाने पर भी जातकर्म किया जाना चाहिए। यदि कोई मृत्यु उपरान्त होने वाले अशौच के मध्य शिशु का जन्म होता है तो अशौच की अवधि समाप्त होने तक जातकर्म-संस्कार स्थगित कर देना चाहिए अर्थात् अशौच आदि का समय बीत जाने पर इस संस्कार को सम्पन्न करना चाहिए।[२१]

बौधायनगृह्यसूत्र के अनुसार भी बालक के जन्म होने पर ही जातकर्म किया जाना चाहिए।[२२] इसी प्रकार **आपस्तम्बगृह्यसूत्र**[२३] **वाराहगृह्यसूत्र**[२४] एक **मानवगृह्यसूत्र** आदि मे पुत्र के जन्म के उसी दिन जातकर्म-संस्कार करने का विधान बतलाया गया है।[२५] वाल्मीकि रामायण

१३. गो. गृ. सू. २.७.१८ १४. कौ. सू., ४.८१ १५. मुहू. चि. पृ. २३८
१६. वही, पृ. २३९ १७. वही, १८. पाण्डेय राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ. ९३१
१९. ना. स. १९.१ २०. झा. श्यामदेवः, बृहदव. पृ. ५४
२१. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ. ९३ २२. बौ. गृ. सू. २.१.२
२३. आप. गृ. सू. २.१.२ २४. वा. गृ. सू. १.२.३ २५. मा. गृ. सू. १७.१.१-२

के अनुसार राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न का जातकर्म संस्कार उचित समय में किया गया था। इनके जन्म के समय गन्धर्वों ने मधुर गान किया, अप्सराओं ने नृत्य किया, देवताओं ने बाजे बजाये और आकाश से पुष्पवर्षा हुई। इस प्रकार एतदर्थ अयोध्या में धूमधाम से उत्सव हुआ था-

गुणवन्तो अनुरूपाश्च रुच्या प्रोष्ठपदोपमाः।[२६]
जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता।
उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलाः।।

वाधूलगृह्यागमवृत्तिरहस्यम् में यह भी कहा गया है कि यदि अशौच की स्थिति में पुत्र का जन्म हो तो इसकी शुद्धि के बाद ही पिता को यह संस्कार करना चाहिए।[२७]

जातकर्म संस्कार का विधि-विधान :

वाधूलगृह्यसूत्र में इस संस्कार की विधि-विधान का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि पुत्र के जन्म होते ही उसे उठाकर गोद में लेकर अंगाद् अश्मेति इस मंत्र से अंगों का मार्जन करना चाहिए।[२८] उस समय उत्पन्न हुए शिशु के मुख को देखकर बिना बोले किसी शोर-शराबे के **ब्रह्म इति** इस मंत्र से ब्राह्मणों को दान देना चाहिए।[२९] इस बात का अनुसरण करते हुए **वाधूलगृह्यागमवृत्तिरहस्यम्** में भी वर्णन मिलता है कि शिशु के जन्म होते ही पिता को सूक्तिका-गृह में प्रवेश कर शिशु को गोद में लेना चाहिए तथा **आङ्गादश्मेति यं दिविस्वित्यनेनंइ** आदि मंत्रों से मार्जन करना चाहिए तथा **ब्रह्मेति** इस मंत्र से शिशु के मुख को देखकर बिना बोले ही ब्राह्मणों को दान देना चाहिए।[३०]

पारस्करगृह्यसूत्र की यदि चर्चा की जाए तो उसमें कहा गया है कि इस संस्कार के आरंभिक कृत्य के रूप में **सोष्यन्तीमदिभज्ञक्र-रभ्युक्षति** अर्थात् जब प्रसव होने का समय आए तो यजुर्वेद के **ओम् एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह** इस मंत्र के द्वारा गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करना चाहिए।[३१] इसके बाद पुनः **अवैतु पृश्निशेवलं शुने** इस मंत्र का वाचन करते हुए, स्त्री के शरीर पर जल के माध्यम से मार्जन करना चाहिए।[३२] परंतु **शाङ्खायनगृह्यसूत्र** के अनुसार यह विधान किया गया है कि जन्मे हुए शिशु को तीन मंत्रों से अनुप्रणीत अर्थात् पवित्र करना चाहिए।[३३] इसके पश्चात् ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के मंत्रों से क्रमशः शिशु के प्राणवायु, समानवायु तथा उदानवायु से अनुप्रणीत करना चाहिए-

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशु न देवा अभि संनवन्ते।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत् पित्रोर दीदे।

---

२६. वा. रा. १.१८.१६-१७ २७. वा. गृ. वृ. रह. २.१६८ २८. वा. गृ. सू. १.५.३
२९. वही, १.५.४ ३०. वा. गृ. वृ. र. २.१७३-१७५
३१. पा. गृ. सू., १.१६.१ ३२. अथर्व, १.११.४ ३३. शां. गृ. सू. १.२४.२

(ऋग्. ६.७.४)

यजु सामानि हि, एधोस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजोमयि धेहि साम्रोदनिहि अंगादङ्गात् संस्रवसि हृदयादधि जायसे। प्राणं ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम्।

(यजुर्वेद ३८.२५)

अंगादंगात् संस्रवसि हृदयादधि जायसे।
प्राणं ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम्।।

(म.ब्रा. १.१५.१६)

मनुस्मृति में भी उल्लेख मिलता है कि अभी जन्म ग्रहण किए गए शिशु के शरीर को यज्ञ एवं महायज्ञों द्वारा ब्राह्मीय किया जाना चाहिए।[३४] गोभिलगृह्यसूत्र में विधान मिलता है कि जब पता चले कि शिशु ने जन्म ले लिया है तो पिता को नाभि का नाल-छेदन कर शिशु की रक्षाहेतु आदेश करना चाहिए।[३५] कौशिकसूत्र के अनुसार जन्म ग्रहण करने के बाद कुमार (शिशु) के हाथ, चरण तथा कानों को स्पर्श करने का विधान है।[३६]

संस्कार विधि में इस संस्कार के विधान का उल्लेख करते हुए महर्षि दयानन्द कहते हैं कि जब प्रसव होने का समय आए, तब अधोलिखित मंत्रों से गर्भिणी स्त्री के शरीर का जल से मार्जन करना चाहिए-

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति।
एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह।।[३७]

(यजु. ८.२८)

अवैतु पृश्निशेवलं शुने जराय्वत्तवे। नैव मांसे न पीवसि : जरायुं पद्यताम्[३८]।।

कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात्सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत्।

- शोधछात्र, वी.वी.बी.आंई.एस. एण्ड. आई. एस. ,पंजाब विश्वविद्यालय,
साधु आश्रम, होशियारपुर

३४. मनु. स्मृ., २.२८ ३५. गो. गृ. सू. २.७.१८ ३६. कौ. सू. ४.९.२०
३७. यजु. ८.२८ ३८. अथर्व. १.११.४

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७१, सं. ९
दिसम्बर ,२०२२

भक्तसुदर्शन नाटक में वस्तुविन्यास
(सन्धि तथा सन्ध्यङ्ग के सन्दर्भ में)

- श्री प्रणव कुमार सरकार

संस्कृत-जगत् के विद्वान् मथुराप्रसाद दीक्षित बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा आधुनिक युग के प्रमुख नाटककारों में से एक हैं। जिन्होंने अपनी अमूल्य कृतियों से आधुनिक संस्कृत-साहित्य को समृद्ध किया है। इनकी रचनाएं निम्नलिखित हैं-

१. नाटक-१. पृथ्वीराज विजय, २. वीरप्रताप, ३. शङ्कर विजय, ४. भूभारोद्धरण, ५. गान्धि-विजय, ६. भक्तसुदर्शन, ७. भारतविजय, ८. भ्रष्टाचार साम्राज्य (अप्रकाशित)

२. मुक्तक- १. कविता रहस्य, २. काव्य कला, ३. अन्योक्तितरङ्गिणी, ४. भगवच्चरणोत्प्रेक्षा

३. कामशास्त्र- केलिकौतूहल

४. वैद्यक- रोगिमृत्युविज्ञानम्

५. दर्शन- मातृदर्शन

६. व्याकरण- १. पाणिनीयसिद्धान्तकौमुदी, (कारकान्त, हिन्दी अनुवादसहित), २. पाली-प्राकृत व्याकरण, ३. प्राकृत प्रकाश, चन्द्रिका तथा प्रदीप व्याख्या सहित, ४. सन्धि-समास-मञ्जूषा, ५. समासचिन्तामणि

७. धर्मशास्त्र- १. नारायणबली निर्णय, २. काशी शास्त्रार्थ, ३. कलिदूत मुख-मर्दन, ४. जैन रहस्य, ५. कर्तकतरुकुठार, ६. मन्दिरप्रवेशनिर्णय ७. वर्णसङ्कर जाति निर्णय, ८. कौलवाम समीक्षा

८. विविध-१.अत्रिनिर्वाचन,२. पृथ्वीराजरासो (प्रथम द्वितीय भाग हिन्दी अनुवाद सहित)

इन रचनाओं में से भक्तसुदर्शन नाटक मथुराप्रसाद दीक्षित की सुप्रसिद्ध रचना है- इसके माध्यम से उन्होंने मां भगवाती के माहात्म्य से राष्ट्र की नैतिक तथा आध्यात्मिक सद्भावना की चेतना को भी जनमानस के बीच प्रस्फुटित करना चाहा है। वस्तुतः काव्य के भेद हैं- १. श्रव्य काव्य, २. दृश्य काव्य[1]। श्रव्य काव्य दो प्रकार का होता है- १. पद्यमय, २. गद्यमय[2]।

दृश्य काव्य- अभिनय के योग्य काव्य दृश्य-काव्य कहलाता है[3]। इस दृश्यकाव्य को रूप[4] रूपक[5] नाट्य[6] नामो से भी जाना जाता है। रूपक के दश भेद किए जाते हैं-

१. सा. द. ६.१ २. वही, ६.३१३ ३. वही, ६.१
४. रूपदृश्यतयोच्यते। दशरूपक १.७ ५. रूपकं तत्समारोपात् । वही. १.७
६. अवस्थानुकृतिनाट्यम् । वही, १.७

नाटकं प्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।।[७]

रूपकों के दश भेद वस्तु, नेता और रस की भिन्नता के कारण हैं।[८] रूपक के प्रथम भेद नाटक का लक्षण करते हुए साहित्यशास्त्रियों ने कहा है कि नाटक की कथा- ख्यात, इतिहासादि में प्रसिद्ध होनी चाहिए। जो कथा केवल कविकल्पित है, इतिहास प्रसिद्ध नहीं है, वह नाटक नहीं हो सकती। नाटक में विलास समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन होना चाहिए। सुख और दुःख की उत्पत्ति तथा अनेक रसों का वर्णन नाटक में किया जाता है। इसमें पांच से लेकर दश तक अंक होते हैं। इसमें धीरोद्धात्त, प्रतापी गुणवान् कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष नाटक का नायक होता है। शृंगार या वीर में से कोई एक रस इसमें प्रधान रहता है। अन्य सब रस अङ्गभूत रहते हैं।[९]

भक्तसुदर्शन नाटक के कथानक का स्रोत एवं ऐतिहासिकता- भक्तसुदर्शन नाटक सोलन नरेश श्री दुर्गा सिंह की प्राणवल्लभा के लिए समर्पित है।[१०] इसी समर्पण पृष्ठ से इस बात की भी पुष्टि होती है कि सोलन नरेश की धर्मपत्नी मां भगवती की परम उपासिका थीं।[११]

अतः लगता है कि मथुरा प्रसाद दीक्षित ने मां भगवती के प्रभाव से अत्यधिक भाव-विभोर हो कर राजा की धर्मपत्नी के धार्मिक तथा आध्यात्मिक तोष के लिए इस नाटक का प्रणयन किया। साथ ही साथ नाटककार ने मां भगवती के माहात्म्य से राष्ट्र की नैतिक तथा आध्यात्मिक सद्भावना की चेतना को भी जनमानस के बीच प्रस्फुटित करना चाहा है। इस नाटक के कथानक का स्रोत यही मालूम पड़ता है।

इस नाटक की ऐतिहासिकता पौराणिक है जिसके कारण इसे प्रागैतिहासिक कालीन भी कहा जा सकता है।[१२] वस्तुतः यह काल भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में देवी-देवताओं के उद्भव तथा विकास का समन्वित स्वर्णिम काल है। प्रस्तुत नाटक का सम्पूर्ण कथावृत्त श्रीमद्देवी-भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध के १४वें अध्याय से २५वें अध्याय तक वर्णित है, जो जनमेजय[१३] की प्रार्थना पर ऋषि व्यास के कथन से संबंधित है। लेकिन शान्त वन में कोलाहल की माता मनोरमा को अतिशीघ्र आश्रम में जाने की सलाह जैसी बातें मूलतः देवीभागवत पुराण में नहीं हैं। इसी तरह मनोरमा तथा सुदर्शन के चले जाने की सूचना पाकर युधाजित् द्वारा अपने सेनापति को उन दोंनो को पकड़े जाने की आज्ञा देने वाले तथ्य भी श्रीमद्देवीभागवत पुराण में दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। यह नवीनता नाटक की मंचनीयता को अत्याधिक स्वाभाविकता प्रदान कर सकती है

---

७. सा.द., १.८ ८. वस्तुनेतारस्तेषां भेदको। वही, १.१० ९. साहित्यदर्पण - ६.१०

१०. भक्तसुदर्शन, समर्पण पृष्ठ ११. वही, समर्पण पृष्ठ

१२. सुदर्शन, भूमिका, पृ. १० १३. श्रीमद्देवीभागवत पुराण, ३,१४,१

क्योंकि कोई भी राजा अपने शत्रु के लिए ऐसा ही करेगा। अत: कहा जा सकता है कि नाटककार ने नाटक में मां भगवती की महिमा तथा उसके स्वरूप को अतिरंजित न कर पुराण के मूल को ही कथानक का रूप दिया है।

कथानक के प्रकार- सभी रूपकों में अनुकरण की स्थिति रहती है। वस्तु, नेता तथा रस के भेदों के कारण रूपक के भेदों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इनमें वस्तुभेद दो तरह के होते है- १. आधिकारिक कथावस्तु, २. प्रासङ्गिक कथावस्तु।[१४]

१. आधिकारिक कथावस्तु- फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है तथा उस फल का स्वामी अधिकारी। फलभोक्ता द्वारा फलप्राप्ति तक निर्वाहित वृत्त या कथा आधिकारिक वस्तु कहलाती है।[१५] भक्तसुदर्शन नाटक में सुदर्शन से सम्बन्धित देवी-भक्ति उसकी उपासना-शक्ति, चारित्रिक तथा नैतिक उदात्त और पाप पर पुण्य की विजय प्राप्त करना प्रस्तुत नाटक की आधिकारिक कथावस्तु है।

२. प्रासङ्गिक कथावस्तु- जो कथा दूसरे प्रयोजन के लिए होती है, किन्तु प्रसङ्ग से जिसका स्वयं का फल भी सिद्ध होता है वह प्रासङ्गिक कथावस्तु कहलाती है।[१६] प्रासङ्गिक कथावस्तु का मुख्य उद्देश्य आधिकारिक वृत्त के फल निर्वहण में सहायता प्रदान करना है, किन्तु प्रसङ्गत: उसका स्वयं का भी फल सिद्ध होता है।

भक्तसुदर्शन नाटक में शशिकला की सखी द्वारा वासुदेव गुरु के माध्यम से शशिकला के प्रेमपत्र का सुदर्शन तक पहुंचवाने का सार्थक प्रयास[१७] सुबाहु द्वारा शशिकला के स्वयंवर की तैयारी[१८] तथा सुलोचना और प्रियंवदा द्वारा शशिकला का सुदर्शन से पाणिग्रहण संस्कार न होने की सम्भावना पर चिन्ता व्यक्त किया जाना[१९] प्रमुख स्थल प्रासङ्गिक कथावस्तु है।

सन्धि, सन्ध्यङ्ग के सन्दर्भ में नाटक का विश्लेषण- सन्धि-जिस प्रकार विखरे प्रसूनों को धागे से पिरोकर माला को तैयार किया जाता है, उसी प्रकार पृथक्-पृथक् कथाभागों को एक धागे में बाँधने का कार्य सन्धियाँ करती हैं। सभी नाट्याचार्यों ने भरतमुनि नाट्यपरम्परा को मानते हुए सन्धियों की संख्या पांच बतायी है।[२०]

दीक्षित जी ने पांच अर्थप्रकृतियों और कार्यावस्थाओं के संयोग से बनी सन्धियों का यथास्थान विधान कर नाट्यपरम्परा का पालन किया।[२१] इन्होंने कथाप्रवाह को बनाये रखने के लिए मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण सन्धियों को प्रस्तुत नाटक में यथास्थान समायोजित किया है। प्रस्तुत लेख में भक्तसुदर्शन नाटक का वस्तुविन्यास, सन्धि तथा सन्ध्यङ्ग मात्र

---

१४. दशरूपक, १.११
१५. दशरूपक, १.११
१६. वही, १.१२
१७. भक्तसुदर्शन, पृ. ४७
१८. वही, पृ. ५८
१९. वही, पृ. ५४
२०. ना. शा. १९.३७
२१. द. रू. १.२२

लिखा जा रहा है।

१. **मुखसन्धि-** जहाँ नाना अर्थ एवं रस उत्पन्न करने वाली बीज नामक प्रथम अर्थप्रकृति की उत्पत्ति हो वहां बीज (अर्थप्रकृति) और आरम्भ (कार्यावस्था) के संमन्वय से बनी हुई सन्धि मुखसन्धि होती है।

भक्तसुदर्शन नाटक के प्रथम अंक में युधाजित् द्वारा मन्त्री पर घूस लेकर सुदर्शन का राज्याभिषेक करवाने का आरोप[२२] लगाया जाना, लेकिन इसका खण्डन करते हुए मन्त्री का कहना कि न तो शत्रुजित् से मेरी शत्रुता है और न ही सुदर्शन से मित्रता। अत: जो राज्य का सर्वाधिक योग्य अधिकारी है उसका ही राज्याभिषेक किया जा रहा है।[२३] लेकिन अन्तत: उत्पात तथा उत्पीड़नवश भयाक्रान्त होकर मनोरमा के साथ सुदर्शन का भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पलायन[२४] स्थलों में मुखसन्धि प्रतिबिन्धत होती दिखाई देती है।

क. उपक्षेपमुखसन्धि- रूपक के आरम्भिक अंश में जब कवि बीज का न्यास करता है तो उसे उपक्षेपमुखसन्धि कहते हैं।[२५] भक्तसुदर्शन नाटक में मन्त्री द्वारा युधाजित् का सुदर्शन के राज्यारोहण का समर्थन करते हुए यह कहना कि शास्त्रानुसार ज्येष्ठ पुत्र का ही राज्य पर अधिकार होता है, कनिष्ठ का नहीं[२६] जैसे वाक्य नाटक के कथावस्तु सम्बन्धित बीज का न्यास पाते हैं। भारद्वाज ऋषि के आश्रम में पलायन के समय डाकुओं द्वारा मनोरमा तथा सुदर्शन के आभूषणों को छीन लेने पर विदल्ल का कहना कि आपत्ति में ही मनुष्य की परीक्षा होती है और भगवान् जो कुछ करते हैं अच्छे के लिए ही करते हैं। आपको समझना चाहिए कि यह घटना ईश्वर ने आप लोगों की मांगलिकता के लिए ही करवायी है।[२७] इन सब नाटकीय स्थलों को भी उपक्षेप कहा जा सकता है क्योंकि सुदर्शन तथा मनोरमा माँ भगवती की कृपा तथा भरद्वाज ऋषि के आशीर्वाद से पुन: मनोरमा अयोध्या की महाराज्ञी तथा सुदर्शन राजा बन जाते हैं।

ख. परिकर- जब बीज न्यास का बाहुल्य पाया जाय तो उसे परिकर कहते हैं।[२८] भक्तसुदर्शन नाटक में मन्त्री द्वारा सुदर्शन को राज्य का उचित अधिकारी बताया जाना[२९] तदनन्तर राज्य छोड़ कर भरद्वाज ऋषि के आश्रम में मनोरमा तथा सुदर्शन का रहना और वहाँ पर भरद्वाज ऋषि द्वारा यह कहना किआप लोगों का कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता है[३०] तथा मुनि द्वारा सुदर्शन के अयोध्या नरेश होने की भविष्यवाणी[३१] आदि परिकर स्थल हैं।

---

२२. भ. सु. प्र. अ. पृ. ५
२३. भ. सु. प्र. अ. पृ. ६
२४. भ. सु. प्र. अ. पृ. १५
२५. सा. द. ६.८३
२६. भ. सु. प्र. अ. पृ. ५
२७. वही, पृ. १५
२८. सा. द. ६.८३.
२९. भ. सु. पृ. ६
३०. वही, पृ. १७
३१. वही. पृ. २७

ग. विलोपन- जब फल से सम्बन्धित किसी वस्तु के गुणों का वर्णन किया जाये तो उसे विलोपन कहते हैं।[३२] युधाजित् का कहना कि पृथ्वी पर वीर ही राज किया करते हैं और सुदर्शन तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहा है।[३३] इसका प्रतिकार कर मुस्कराते हुए भरद्वाज ऋषि का कहना कि विश्वामित्र ने तप के प्रभाव से ही द्वितीय स्वर्ग का निर्माण किया था। च्यवन ने भी तप प्रताप से ही सुख प्राप्त किया था। तप से कौन सा उद्देश्य सिद्ध नहीं होता?[३४] अर्थात् सुदर्शन भी अयोध्या का राजा अपने तपबल पर ही बनेगा। ऐसी प्रशंसा भी भक्तसुदर्शन नाटक में विलोपन की श्रेणी में ही रखी जा सकती है।

घ. युक्ति- जहाँ अर्थों का अवधारण या समर्थन किया जाय वहाँ युक्ति होती है।[३५] विदल्ल द्वारा वन में मनोरमा को मलिन वस्त्र पहना कर उसके प्राण बचाने की योजना[३६] पर मनोरमा द्वारा भी इसका समर्थन[३७] किया जाना भक्तसुदर्शन नाटक में युक्ति स्थल हैं।

ड. प्राप्ति (आगम)- जहाँ फल की प्राप्ति की आशा में सुख का आगम हो वहाँ प्राप्ति नामक सन्ध्यंग होता है।[३८] भक्तसुदर्शन नाटक में मनोरमा द्वारा विदल्ल से यह कहा जाना कि मन्त्री जी आप को एक रहस्य बताऊँ। आज मुनि जी ने यह कहा है कि सुदर्शन अयोध्या का सम्राट् अवश्य होगा[३९] और जिस सुखद भविष्यवाणी पर हर्षातिरेक होकर विदल्ल का कहना कि हमारे मनोरथ सिद्ध हो गये।[४०] नाटक के ये प्राप्ति स्थल हैं।

२. प्रतिमुखसन्धि- जब बिन्दु अर्थप्रकृति और यत्न कार्यावस्था संयुक्त होकर कार्य शृंखला को अग्रसर करें तो वह प्रतिमुखसन्धि कहलाती है।[४१] प्रतिमुखसन्धि में मुखसन्धि में दिखाये गये बीज का कुछ अलक्ष्य रीति से उद्भेद रहता है। भक्तसुदर्शन नाटक में भरद्वाज ऋषि के द्वारा युधाजित् के मन्त्री को यह कहा जाना कि क्या बकते हो? मालूम पड़ता है कि अपने को शक्तिशाली समझ कर मदोद्धत हो गये हो[४२] तुम्हें पता नहीं कि अकेले परशुराम ने सेना सहित कार्तवीर्य का नाश कर डाला था। आप भी उसी मार्ग के अनुगामी हो[४३] अर्थात् अकेले में आपकी सम्पूर्ण सेना नाश कर तुम्हारे राजा को यम का अतिथि बना दूँगा। मनोरमा का अपने पुत्र सुदर्शन तथा अपनी सुरक्षा के प्रति विश्वास[४४] भरद्वाज ऋषि की भविष्यवाणी कि सुदर्शन निश्चित रूप से अयोध्या का राजा बनेगा जिससे तुम्हारे दु:खों का नाश होने वाला है।[४५] अत: मनोरमा का भरद्वाज

---

३२. दशरूपक १.१७ ३३. भ. सु. पृ. २७ ३४. वही, पृ. २८
३५. द. रू. १.२८ ३६. भ. सु. पृ. ३० ३७. वही, पृ. ३१
३८. प्राप्तिः सुखागम्:। द. रू. १.२८ ३९. भ. सु. पृ. ३१ ४०. वही, पृ. ३१.
४१. द. रू. १.३० ४२. भ. सु. पृ. २१ ४३. वही, पृ. २१
४४. वही, पृ. २८ ४५. वही, पृ. ४१

ऋषि से कहा जाना महाराज! आपने शस्त्रविद्या में सुदर्शन को सर्वश्रेष्ठ बना दिया है। तथापि पुत्रस्नेह के कारण इसके साथ युद्धभूमि में जाना चाहती हूँ।[४६] यह प्रस्तुत नाटक की प्रतिमुखसन्धिस्थल है। क्योंकि यहाँ पर भरद्वाज ऋषि के कथन से बीज का प्रकाशन (दृष्ट) होता है तथा मनोरमा के मन में जो संदेह उत्पन्न होता है वह बीज का अदृश्य (नष्ट) होना है अर्थात् फलप्राप्ति में दृष्ट तथा नष्ट होने से प्रतिमुख सन्धि है। प्रतिमुखसन्धि के १३ भेद होते हैं। लेकिन दीक्षित जी ने अपने नाटक में कुछ भेद ही समाहित किये हैं।

क. परिसर्प- जब बीज एक बार दृष्ट हो जाय, किन्तु फिर दिखायी देकर नष्ट हो जाये और उसकी खोज की जाये तो वह परिसर्प कहलाता है।[४७] राज्यरोहण के लिए सुदर्शन की जय-जयकार[४८] सुदर्शन के ज्येष्ठ सन्तान होने के कारण मन्त्री द्वारा जहाँ राज्यारोहण का समर्थन[४९], लेकिन वहीं युधाजित् के आतंक से सुदर्शन के सम्राट् होने में विघ्न की स्थिति[५०] भक्तसुदर्शन नाटक में परिसर्प सन्ध्यंग स्थल हैं।

ख. नर्मद्युति- धैर्य की स्थिति नर्मद्युति कहलाती है। इसके अन्तर्गत पात्र में धैर्य का संचार पाया जाता है। राज्यारोहण के युद्ध में मनोरमा के पिता की हत्या तथा अनाथ सुदर्शन को बचाने के लिए उसका व्याकुल होना और इस शोक और उद्वेग की स्थिति में विदल्ल द्वारा मनोरमा को धैर्य धारण की सलाह[५१] की स्थिति; भक्तसुदर्शन नाटक में नर्मद्युति सन्ध्यंग की स्थति उत्पन्न करती है।

ग. प्रगमन- जहाँ पात्रों में परस्पर उत्तरोत्तर वचन पाये जाते हैं, जिसमें बीज का साहाय्य प्रतिपादित हो वहाँ प्रगमन होता है।[५२] भक्तसुदर्शन नाटक में विदल्ल द्वारा मनोरमा को भील कन्या के रूप में बता कर प्राणरक्षा[५३] तथा मनोरमा द्वारा विदल्ल को बताया जाना कि भरद्वाज ऋषि ने भविष्यवाणी की है कि सुदर्शन ही अयोध्या का सम्राट् बनेगा[५४] आदि घटनाएँ नाटक के प्रगमन अंश दृष्टिगोचर होते हैं।

घ. वज्र- जहाँ नायकादि के प्रति कोई पात्र प्रत्यक्ष रूप में निष्ठुर वचन का प्रयोग करे वह वाक्य वज्र कहलाता है।[५५] नाटक में सुदर्शन द्वारा अपने-आप को अयोध्या के सम्राट् होने की महत्वाकांक्षा अभिव्यक्त करने पर युधाजित् द्वारा उसे कठोर वचन कहते हुए धमकाने का प्रयास[५६] इस नाटक का वज्र सन्ध्यंग है।

३. गर्भसन्धि- जहाँ पूर्व सन्धियों में कुछ प्रकट हुए और कुछ छिपे हुए बीज का पुनः अन्वेषण किया जाये[५७] वहाँ गर्भसन्धि होती है। यह सन्धि

---

४६. भ.सू., पृ. ५१ | ४७. दृष्टानष्टानुसर्पणम्। द.रू.१.३२ | ४८. भ. सु. पृ. ४
४९. वही, पृ. ५ | ५०. वही, पृ. १० | ५१. भ.सु.पृ. १२
५२. द.रू.पृ. ३३ | ५३. भ. सु. पृ. ३० | ५४. वही, पृ. ३१
५५. वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम्। द. रू. १.३५ | ५६. भ.सु.पृ. ६२ | ५७. सा. द. ६.७८

२१ अङ्गों वाली होती हैं। इस सन्धि में पताका (अर्थप्रकृति) तथा प्राप्तिसम्भव (कार्यावस्था) का मिश्रण होता है, लेकिन कुछ नाटकों में पताका प्रयोग दिखाई देता है तथा कुछ में नहीं। किन्तु प्राप्तिसम्भव का होना जरूरी है। भक्तसुदर्शन नाटक के तृतीय अंक में माँ भगवती की कृपा से शशिकला को सुदर्शन से पाणिग्रहण संस्कार करने का स्वप्न[५८] आना, सुदर्शन को शशिकला से परिणय संस्कार का स्वप्न आना[५९] तथा शिल्पी को भी सुदर्शन की सहायता के लिए रथ बनाने का स्पप्न आना[६०] यह स्थल नायक सुदर्शन की फलप्राप्ति तथा प्रतिनायक युधाजित् को फल की अप्राप्ति दिखाई देने लगता है। अतः प्राप्ति और अप्राप्ति में अन्वेषण होने से गर्भसन्धि है। गर्भसन्धि के १२ भेदों में से भक्तसुदर्शन नाटक में अभूताहरण[६१], अनुमान[६२], तोटक[६३], उद्वेग[६४] दृष्टिगोचर होते हैं।

४. अवमर्शसन्धि- जहाँ क्रोध से, व्यसन से या विलोभन से फल की प्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाय तथा गर्भसन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया जाए वहां अवमर्शसन्धि होती है।[६५] नाटक में सुबाहु द्वारा यह कहना कि स्वयंवर में सुदर्शन माँ भगवती की आज्ञा से आया है। अतः उसे युधाजित् के आतङ्क से कदापि नहीं डरना चाहिए। आगे उसके द्वारा युधाजित् को यह संवाद दिया जाना कि शशिकला स्वप्न में ही सुदर्शन से अपना पाणिग्रहण संस्कार कर चुकी है। अतः शशिकला स्वयंवर में आना ही नहीं चाहती है[६६] ऐसी बातें तथा युधाजित् द्वारा बार-बार आतङ्क तथा उत्पीड़न की गीदड़-भभकी दिखाने पर सुबाहु कथन[६७] इस प्रकार सुबाहु का विचार-विमर्श ही प्रस्तुत नाटक की विमर्शसन्धि है। भक्त सुदर्शन नाटक में अवमर्शसन्धि के अपवाद[६८], संफेट[६९], विद्रव[७०], द्रव[७१] व्यवसाय[७२] भेद प्राप्त होते हैं।

५. निर्वहण सन्धि- रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुखादि अर्थ जो अब तक इधर-उधर बिखरे होते हैं और जब उनको अर्थ के लिए एक साथ समेटा जाता है या एकत्र किया जाता है तो वह निर्वहण सन्धि होती है।[७३] नाटक में मां भगवती के परोक्ष माहात्म्य की कृपा तथा सुदर्शन की नैतिकता और सद्‌चरित्रता तथा भक्तिभाव को

---

५८. भ.सु.पृ. ४२ ५९. वही, पृ. ४८ ६०. वही, पृ. ४८
६१. अभूताहारणं छद्म। द. रू.१.३८ ६२. अभ्यूहो लिङ्गतोऽनुमा। द. रू. १.४०
६३. संरब्धं तोटकं वचः। द. रू. १.४० ६४. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः। द. रू. १.४२
६५. द. रू. १.४३ ६६. भ.सु. पृ. ७१
६७. वही, पृ. ७५ ६८. देषप्रख्यापवादः स्यात्। द. रू. १.४५
६९. संफेटः रोषभाषणम्। वही, १.४५ ७०. विद्रवो वधबन्धादिः। वही, १.४५
७१. द्रवो गुरुतिरस्कृतिः। वही, १.४५ ७२. व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः। द.रू. १.४७
७३. वही, १.४९

आधार बनाकर पाप पर पुण्य की तथा असत्य पर सत्य की विजय दिखाने में अत्यधिक सफल मालूम पड़ते हैं। युधाजित् स्वार्थी तथा अन्यायी है जो सुदर्शन को आतङ्कित कर अपने नाती को ही अयोध्या का सम्राट् बनाना चाहता है। इस निर्णय के लिए दोनों पक्ष समरभूमि में आते हैं और युद्ध होता है। इसी बीच माँ भगवती स्वयं आकर युधाजित् तथा उसके नाती शत्रुजित् का वध करती हैं।[७४] फलतः सुदर्शन शङ्खनाद कर अपना विजयोत्सव घोषित करता है।[७५] इन कथनों से सारे बिखरे हुए अर्थप्रधान प्रयोजन समन्वित होने से प्रस्तुत नाटक की निर्वहण सन्धि है।

- शोधछात्र, वी.वी.बी.आई.एस. एण्ड. आई. एस. ,पंजाब विश्वविद्यालय,
साधु आश्रम, होशियारपुर

७४. भ. सु. पृ. ७९ ७५. वही, पृ. ७९

परिशिष्ट

१. कविता

२. कहानी

३. संस्थान-समाचार

कहानी

सच्चा गुरु

- श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा

शिवराम शर्मा अपने रिटायरमेंट तक जीवन को पूरी जिंदादिली से जीते हुए घर-परिवार, दोस्ती, समाज, रिश्तेदारों के साथ मिलजुलकर रहते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन बखूबी करते रहे। निराशा को उन्होंने कभी अपने पास फटकने तक नहीं दिया। बेटी की शादी में विलम्ब होने पर पत्नी को चिन्ताग्रस्त देखकर वे उसे समझाते- ''जोड़ा ऊपर से बनकर आता है। हर लड़की के लिए एक लड़का और हर लड़के के लिए एक लड़की ये कुदरत का नियम है। उदास होने की क्या बात है? हमारी तलाश जारी है। देखना, एक दिन हमारी बिटिया की शादी धूमधाम से होगी, और हुआ भी यही। शर्माजी की बेटी पायल की शादी एक अच्छे परिवार के अच्छे लड़के से सम्पन्न हो गई। बेटे की बेरोजगारी के विषय में चिंतित पत्नी को भी शर्माजी ने दिलासा देते हुए समझाया था कि कर्म करना व्यक्ति के हाथ में है। ईश्वर पेट देता है तो रोटी भी देता है। हमारा बेटा नौकरी की कोशिश तो कर रहा है। सरकारी न सही प्राइवेट नौकरी मिल जाये। वो भी नहीं मिली तो अपना कोई छोटा-मोटा व्यवसाय कर लेगा। जीवन सबका चलता है। पति की सकारात्मक-भरी बातों से पत्नी दिव्या को ताकत मिल जाती। हालांकि दिव्या बेटे-बेटी की सलामती, अच्छी नौकरी, विवाह आदि के लिए शुरु से ही जप-तप, उपवास, व्रत, दान आदि करती रहती थी। लेकिन लम्बे समय तक असफलता मिलने से वह उदास हो जाती। ऐसे में पति शिवराम शर्मा उन्हें अपनी बातों से संबल प्रदान करते थे। बेटे की नौकरी भी लग गई। विवाह भी हो गया और एक बच्चा भी हो गया। एक आदर्श पति श्रेष्ठ पिता का फर्ज निभाने वाले शिवराम शर्मा रिटायरमेंट के बाद एक दम अकेले से हो गये। वर्षो की व्यवस्था-भरा जीवन टूट चुका था। दिन-भर घर में पड़े रहो। कोई काम नहीं। न ऑफिस, न वे दोस्त सबसे मिलना-जुलना तकरीबन बंद हो गया। घर-बाहर का काम बेटे-बहू संभाल रहे थे। वे कभी अखबार पढ़ते। कभी टी.वी. देखते। कभी लेटे रहते दिन-दिन भर। टहलने निकलते तो अल्प समय में वापिस आ जाते। वे यार-दोस्त, दफतर कुछ भी नहीं रह गया था। कभी कोई पुराना साथी मिलता भी तो अपने बेटे-बहू से पीड़ित होने की कहानी सुनाकर उन्हें और बोझिल कर देता।

वे अपने खाली समय को कैसे भरे? कहां बिताये अपना वक्त। किससे कहें अपने अकेलेपन

की बात। उनकी पत्नी दिव्या तो अपने पोते की देखभाल में अपना समय निकाल देती है। बल्कि पोता होने के बाद उनकी पत्नी पहले से ज्यादा व्यस्त और खुश रहने लगी थी।

एक दिन वे एक मंदिर से दर्शन करके निकल रहे थे। मंदिर में प्रवचन चल रहे थे। गुरुजी महाराज की दिव्य वाणी से प्रभावित होकर रुक गये। मंदिर के प्रांगण में भागवत सप्ताह चल रहा था। शिवराम शर्मा सुबह, शाम चलने वाली भागवत-कथा का रसपान करने लगे। प्रवचनों से प्रभावित होकर उन्होंने भी चन्दा दिया और नियम बना लिया कि अब अपना समय ईश्वर भक्ति, सत्संग में व्यतीत करेगें। पत्नी ने व्यस्तता का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि जीवन अंतिम पड़ाव पर है। ज्ञान, वैराग्य के सहारे मोक्ष का मार्ग तलाश रहे हैं। उन्होंने पत्नी को भी कहा कि छोड़ो संसार का मोह और अपना परलोक सुधारो। लेकिन पत्नी ने कहा- "यह लोक, अपने बेटे-बेटी, बहू, दामाद ये जीवन ही सत्य है। यही अपना है।" पति ने कुढ़कर कहा- "संसार से इस उमर में भी इतना मोह ठीक नहीं है।"

पत्नी ने कहा- "ये प्रेम ये मोह ही तो जीवन-भर की पूंजी है। जीते जी कैसे छोड़ दूँ। मरने के बाद तो सब छूट ही जाता है। लेकिन अभी तो हम जिन्दा हैं।" पति ने सोचा-इस मूर्ख से बहस करने से कोई फायदा नहीं। वैसे भी गुरुजी महाराज कहते हैं कि मुक्ति का मार्ग अकेले ही तय करना होता है। शिवराम शर्मा जी अपने मोक्ष में व्यस्त हो गये।

एक दिन बहू ने कहा- "बाबूजी कल आपके पोते का जन्मदिन है। ढ़ेर सारी तैयारी करनी है।" उन्होंने कोई उत्तर न दिया। जब पत्नी ने उनसे कहा कि आप अपने बेटे-बेटी का जन्म दिन कितने उत्साह से मनाते थे। हफते भर पहले से तैयारी शुरु कर देते थे। पोते के जन्मदिन पर ऐसी उदासीनता क्यों? उन्होंने कहा- "जन्मदिन की खुशियाँ मनाना बेवकूफी है। अरे सही ढंग से सोचो तो जीवन का एक वर्ष कम हो गया।"

पति की इस बात पर पत्नी को गुस्सा आ गया। बोली- "शुभ-शुभ बोलो। क्या उल्टा-सीधा बक रहे हैं अपने पोते के बारे में क्या बोल रहे हैं आप। बहू सुन लेगी तो क्या सोचेगी।"

शर्मजी ने गंभीर होकर कहा- "सत्य तो यही है। जो सच न सुन सके। उससे बड़ा अभागा कौन"

आगे भी ऐसे अवसर आये। जिनसे शर्मा जी ने अपने आपको अलग रखा। बेटी-दामाद, नाती भी आते तो वे मात्र औपचारिकता निभाकर एक तरफ हो जाते। पायल ने पूछा भी कि माँ, बाबूजी को क्या हो गया है? पहले तो इतने उदास नीरस, एकाकी कभी नहीं रहते थे। क्या तबीयत ठीक नहीं रहती।"

माँ ने कहा- "हाँ बेटा तुम्हारे बाबूजी को मोक्ष की बीमारी लग गई है।" पोते का जन्म दिन धूमधाम से मनाया गया। सब थे केवल दादाजी श्री शिवराम शर्मा को छोड़कर। उन्होंने कार्यक्रम में

कोई हाथ नहीं बटाया। कोई खुशी नहीं दिखाई। लेकिन जब वे उसमें शामिल भी नहीं हुए तो कई लोगों ने प्रश्न खड़े किये। बहू को भी बहुत बुरा लगा। बहू के माता-पिता भी आये थे। उन्होंने भी शिकायत की। पोता भी दादाजी..... दादाजी करता रहा। बेटे ने भी माँ से कहा- "बाबूजी ऐसा व्यवहार क्यों कर रहें हैं क्या हमसे कोई गलती हो गई। क्या हमसे नारात हैं।" माँ ने समझाया ऐसी कोई बात नहीं है। बुढ़ापे में सठिया गये हैं। धर्म के कंधे पर मुँह रखकर जीवन से भाग रहे हैं।"

बहू ने व्यंग्य से कहा- "संन्यास ही लेना है तो काशी-कैलाश जाना चाहिए।"

माँ नें बेटे-बहू को समझाया- तुम लोग अपनी घर-गृहस्थी पर ध्यान दो। इस उम्र में ऐसा हो जाता है। धीरे-धीरे खुद ठीक हो जायेगें। लेकिन जब पत्नी दिव्या ने उनसे कहा कि घर-परिवार पर भी ध्यान दीजिये। बेटे-बहू आपकी उदासीनता से गुस्से में हैं। घर का माहौल खराब हो रहा है।

तो शर्माजी ने कहा- "जीवन क्षणभंगुर है। ईश्वर ही सत्य है। संसार मिथ्या है और इस मिथ्या संसार के नाराज होने पर क्या खुशी मनाना क्या दुःख करना। देह के नंश्वर रिश्तों के लिए परमात्मा को नहीं छोड़ा जा सकता।"

बस इस बात पर पत्नी दिव्या गुस्सें में आ गई और गुस्सें में बोलती गई। उनका बोलना सुनकर पति सन्नाटे में आ गये। ये क्या धर्म का धतूरा खाकर पगला गये हो। यही संसार सत्य है। यदि संसार सत्य न होता तो भगवान् संसार ही नहीं बनाते। विष्णुजी इस संसार का पालन-पोषण नहीं करते। भगवान् की बनाई दुनियाँ को तुच्छ-दृष्टि से देखने वाले कैसे भगवान् के भक्त हो सकते हैं। जो धर्म उदासीन, निराशा निर्मोही होना सिखाता है। वह धर्म नहीं अधर्म हैं। सत्संग में बैठने जाते हैं या कुसंग में। तुम्हारे गुरुजी को संसार से जीवन से इतनी नाराजगी है तो आत्महत्या क्यों नहीं कर लेते। खुद धन बटोरने में लगे हुए हैं ओर लोगों को माया, मोह से मुक्ति का रास्ता दिखाकर गुमराह कर रहे हैं। देह के रिश्ते कैसे व्यर्थ हो गये। देह के रिश्ते उतने ही सच्चे हैं जितना सच्चा ये संसार है। सच मैं हूँ तुम्हारी पत्नी। जिसनें हर सुख-दुख में आपके साथ जीवन के ३५ वर्ष गुजार दिये। सच हैं हमारे बच्चे। जिन्हें देख-देखकर हम जीते रहे। जिनके सुखी भविष्य की हम कामनायें करते रहे। जिनके दुःख में हम दुःखी और जिन्हें खुश देखकर हमारा हृदय आनंदित होता रहा। ये घर-परिवार, समाज का पाठ मात्र उदासीनता, पलायनवादिता है। सत्संग वो जिससे जीवन प्रेम से भर उठे। देह के रिश्ते मिथ्या होते तो ईश्वर मनुष्य रूप अवतार धरकर इसका आनन्द न उठाते। ये कैसा ज्ञान है जो आपको संसार के सामान्य ज्ञान से भी अलग कर रहा है। अपने अकेलेपन को छिपाने के लिए भगवान् की आड़ मत लो। बुढ़ापा, जीवन का अंत नहीं है। जीवन का एक हिस्सा है। वो समय है कि

हम अपने से छोटों को स्नेह करें। दूसरों के सुख-दु:ख में शामिल हों। जवानी की व्यस्तता में जो नहीं कर पाये। वो अब इस उमर में करें। एक आरामदायक और सम्मानपूर्वक जीवन जीने का नाम है बुढ़ापा। जहां सब हमें दादा-दादी, नाना-नानी, के सम्बोधन से बुलायें। आपने पति का पिता का फर्ज बखूबी निभाया। अब दादा और नाना का अति सम्माननीय रिश्ता मिला है तो उसे निभाने की बजाय जीवन की क्षणभंगुरता का रट्टा मारे बैठे हैं। संसार इतना व्यर्थ है, झूठा है, तो अपने गुरुदेव से कहो कि क्यों संसारियों के बीच आसन जमाकर बैठे हैं। क्यों उनसे चंदा, दान-दक्षिणा लेते फिर रहे हो। जाकर हिमालय में आसन जमायें। शरीर को पतित मानने वाले गुरुजी से कहना कि शरीरधारी राम-कृष्ण का मंदिर बनाकर क्यों पूजते हो। खुद अपनी देह को स्वस्थ रखने के लिए क्यों प्राणायाम, योगासन करते हो और सिखते हो। अपना घर, अपने लोंगो के साथ प्रेमभाव से रहना, उनसे वैचारिक तालमेल बिठाना ही धर्म है मनुष्य का। जिसनें ईश्वर की बनाई सृष्टि का, ईश्वर क़ी दी हुई देह का अपमान किया। वो महात्मा नहीं पापी हुआ। वो धर्म नहीं अधर्म हुआ। अपने एकान्त से ऊबकर धर्म की शरण में जाना नहीं होता। अकेलापन होता है बुढ़ापे में। तो घर के काम में हाथ बटाओ। धर्म का पलायनवादिता वाला मुखौटा मत लगाओ।

जो जीवन हमें मिला हैं। वही सच्चा है। बाकी तुम्हारा परलोक स्वर्ग, मोक्ष सब बकवास है। यदि सत्य है भी तो जीवन से उदासीन लोगों के लिए नहीं है। ईश्वर के दिये जीवन में प्रेम और निष्ठा रखना ही धर्म है।''

पत्नी के मुख से धर्म, ज्ञान, जीवन की सच्ची बातें सुनकर मानों पति शिवराम शर्मा के बन्द नेत्र और भटकती बुद्धि को प्रकाश मिल गया हो। उन्होंने कहा- ''तुम सत्य कहती हो। मैं अपने अकेलेपन से ऊबरकर धर्म की आड़ लेकर ईश्वर का अपमान कर रहा था। तुम ही मेरी सच्ची गुरु हो।''

बस फिर क्या था। धर्म और मोक्ष के जाल से मुक्त होकर शिवराम शर्मा अपने बुढ़ापे को सफल बनाने के लिए जनहित के कार्यों से जुड़ी सामाजिक संस्था से जुड़ गये और उन्होंने घर की जिम्मेदारी के रूप में दादा का रिश्ता निभाना शुरु कर दिया। पोते को स्कूल छोड़ने और स्कूल से लाने की जिम्मेदारी उन्होंने संभाल ली। पति और पिता की तरह अब अच्छे ससुर, दादा, नाना की जिम्मेदारी निभा रहे हैं आजकल शिवराम शर्मा जी।

- **राजुल ड्रीम सिटी, ए-29/101, फर्स्ट फलोर,**
अमखेड़ा जबलपुर (म.प्र.) 482004 मो. 9425405022

नास्ति भूमिसमं दानं, नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति सत्यसमो धर्मः नास्ति दानसमो निधिः।।

शास्त्र कहते हैं कि–संसार में भूमि दान से बढ़कर कोई दान नहीं है, माता से बढ़कर कोई और गुरु नहीं होता। सत्य के समान कोई धर्म नहीं तथा दान के समान कोई खजाना नहीं।

पूज्य पिता

स्व. श्री प्रभुदयाल जी

(जिनका दुःखद निधनः २६-११-१९९२ को हुआ)

पूज्या माता

स्व. श्रीमती शान्ति देवी

(जिनका दुःखद निधनः २८-०२-२०१४ को हुआ)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग-

श्री अशोक कुमार खेर

B.Com [H], LL.B., FCA

सर्वश्री अशोक खेर एण्ड कम्पनी

[CHARTERED ACCOUNTANTS]

१०१, बी-१४, मुखर्जी नगर, कम्पलैक्स, दिल्ली-११० ००९

की ओर से

नैवार्थेन च कामेन विक्रमेण न चाज्ञया।
शक्या दैवगतिः लोके निवर्तयितुम क्षमः।।

वा. रा. युद्ध. ७.७

अपने पूर्व जन्म में किए गए कर्मों के फलरूप प्राप्त भाग्य को व्यक्ति वर्तमान जन्म में न धन के बल पर, न विशेष कामना से, और न पराक्रम तथा अन्य किसी प्रकार से बदल नहीं सकता। तात्पर्य है कि पूर्वजन्म कृत कर्म के अनुरूप वर्तमान जन्म में व्यक्ति सुख-दुःख प्राप्त करता है।

With best compliments from

Sh. Sharwan Kumar Rehani
&
Dr. Vasundhra Rehani

1617, Sector 44-B,
Chandigarh-160043

यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं प्रज्ञया प्रतिबाधते।
तेजस्विनं तं विद्वांसो तत्त्वदार्शिन।।

- महा. आदि.पर्व. ३०.१७

इस संसार में पण्डित-जन उसी को तेजस्वी मानते हैं जो किसी कारण अपने में उत्पन्न क्रोध को अपनी कुशाग्रबुद्धि द्वारा समाप्त कर देता है अर्थात् उसको दबा देता है। इसलिए क्रोध को समाप्त करना सबसे बड़ी तपस्या है।

❋

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

प्रयोजक :

सर्वश्री बैजनाथ भण्डारी सार्वजनिक धर्मार्थन्यास

ई-२२, डिफैन्स कालोनी,

नई दिल्ली-११००२४

संस्थान-समाचार

दान-

Smt. Sheela Sharma, Una Road, Hoshiarpur.	1000/-	Mr. Harish Kumar Bharti, U.S.A.	50000/-
Sh. Ashok Kumar, Mukharjee Nagar, Delhi.	2100/-	Sh. M.P. Bir Chandigarh	1100/-
Sh. Ravi Chopra, U.S.A.	21000/-	Sh. Ravi Kumar Jain, Hoshiarpur	5100/-
Sh. Sharwan Kumar Rehani, Chandigarh	5000/-		

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

बधाई- प्रो. (डॉ.) नरसिंहचरण पण्डा द्वारा 1-11-2022 को वी. वी. बी. आई एस एण्ड आई. एस (पंजाब विश्वविद्यालय पटल) साधु आश्रम, होशियारपुर के चेअरमैन पद पर प्रतिष्ठित होने पर उनके सहकर्मियों और संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत बधाई। आशा है इनकी अगुवाई में विभाग अत्यधिक उन्नति प्राप्त करेगा।

संस्थान परिसर में स्थित म्यूजियम के इंचार्ज श्री सुरेन्द्र कुमार के यहाँ पुत्र-जन्म पर संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से बच्चे के माता-पिता को बहुत-बहुत बधाई। बच्चा चिरंजीवी हो, स्वस्थ हो, यही हम सब की कामना और शुभाशीष है।

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-११-२०२२ को प्रकाशित।